ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 08 मई 2016 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार, 08 मई 2016 से 14 मई 2016

वै.शु.–02● वि० सं०–2073 ● वर्ष 58, अंक 21, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 193 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,117 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

दिल्ली में महात्मा हंसराज पावन जयंती समारोह का हुआ भव्य आयोजन

''समर्पण के बिना इतिहास नही रचा जा सकता!''-पूनम सूरी

''समर्पण के बिना इतिहास नहीं रचा जा सकता, तप द्वारा कठिन से कठिन परिस्थिति का सामना सरलता से सम्भव है। संघर्ष से मुनष्य का व्यक्तित्व गौरव और गरिमा प्राप्त करता है।'' ये शब्द डी.ए.वी कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान डॉ. पूनम सूरी ने महात्मा हंसराज की पावन जंयती पर आयोजित 'समर्पण दिवस' समारोह में अपने स्वागत भाषण में कहे। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में आगे कहा, ''युवा हंसराज ने निःशुल्क डी.ए.वी. की सेवा का संकल्प लेकर न केवल इस आंदोलन की नींव को मजबूत किया बल्कि इसकी दिशा और दशा भी तय कर दी। जीवन भर स्वयं अभावों में तपते रहे महात्मा हंसराज ने ज्ञानवान एवं गुणवान देश के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। महात्मा हंसराज पावन जंयती समारोह का आयोजन हम उन मूल्यों के लिए स्वयं को पुनः समर्पित करने के लिए करते हैं। जो हमारी विरासत हैं।'' उन्होंने अपने सम्बोधन में आगे कहा, ''देश भर के डी.ए.वी. संस्थान अन्य शैक्षिक संस्थानों से अलग है, क्योंकि इन संस्थानों में श्रेष्ठ संस्कारों द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों का निर्माण किया जाता है। डी.ए.वी. में शिक्षित–प्रशिक्षित

विद्यार्थी अपने श्रेष्ठ सकारात्मक योगदान के द्वारा दुनिया में अपनी एक अलग छवि प्रस्तुत करते हैं। महात्मा हंसराज ने अपने समर्पण द्वारा जो उच्च मानवीय मूल्य स्थापित किए थे उन्हीं की नींव पर स्थापित डी.ए.वी. संस्थान मानवता का ध्वज उठाए आगे खड़े दिखाई देते हैं।'' उन्होंने यह भी बताया कि अपनी गतिविधियों से राष्ट्रव्यापी डी.ए.वी. संस्थान राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने का महत्वपूर्ण काम कर रहें हैं।

इस वर्ष आयोजन करने का दायित्व महात्मा हंसराज की स्मृति में 26 जुलाई, 1948 को स्थापित हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय को सौंपा गया। हंसराज कॉलेज अपनी शैक्षणिक तथा अन्य सृजनात्मक उपब्धियों के लिए देश ही नहीं, देश के बाहर भी चर्चित हैं। 14.7 एकड़ में फैला यह महात्मा हंसराज का जीवंत स्मारक है।

'समर्पण दिवस में मुख्य सम्बोधन गुजरात के राज्यपाल श्री एवं डी.ए.वी. में शिक्षित–प्रशिक्षित श्री ओम प्रकाश कोहली ने दिया। यह उल्लेखनीय है कि श्री कोहली हंसराज कॉलेज के न केवल विद्यार्थी रहे अपितु उन्होंने कुछ वर्ष इस कॉलेज में पढ़ाया भी। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा, ''आज से लगभग 130 वर्ष पूर्व शुरू हुए डी.ए.वी. आंदोलन ने लाखों घरों को ज्ञान से आलोकित किया। करोड़ों युवाओं के भविष्य को सुखद बनाया। देश भर में फैली 800 से अधिक डी.ए.वी संस्थायें महात्मा हंसराज के जीवंत स्मारक हैं। आर्य समाज ने अंधविश्वास और रूढ़ियों के विरुद्व एकजुट होने के लिए देशवासियों को प्रेरित किया। जिस दौर में इन्होंने ये सब किया, उसकी कठिनाइयों की कल्पना भी आज संभव नहीं है।'' श्री कोहली ने अपने सम्बोधन में आगे कहा, ''यह हर्ष का विषय है डी.ए.वी. आंदोलन आज भी शिक्षा के प्रचार–प्रसार द्वारा देश की एकता और अखंडता को मजबूत बना रहा है। देश में जब भी कोई संकट या प्राकृतिक आपदा आती है, डी.ए.वी. आंदोलन एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा आगे बढ़ कर

शेष पृष्ठ 04 पर ☞

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 08 मई, 2016 से 14 मई, 2016

समित्पाणि शिष्य के उद्गार

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

एतास्ते अग्ने समिधः, त्वमिद्धः समिद् भव।
आयुरस्मासु धेहि, अमृतत्वमाचार्याय।।

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः** छन्दः **अनुष्टुप्।**

● **(अग्ने)** हे यज्ञाग्नि! **(एताः)** ये **(ते)** तेरे लिए **(समिधः)** समिधाएँ [हैं], [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [ब्रह्मचारियों] में **(आयुः)** जीवन, [और] **आचार्याय** (आचार्य) के लिए **(अमृतत्वम्)** अमरत्व **(धेहि)** प्रदान कर।

● मैं समित्पाणि होकर आचार्य के समीप उपनीत होने तथा विद्याध्ययन करने आया हूँ। अपने हाथ में मैं समिधायें इस निमित्त लाया हूँ कि इनसे मैं अग्निहोत्र करूँगा, समिधाओं को एक–एक कर अग्नि में आहुति दूंगा।

हे यज्ञाग्नि! ये तेरे लिए समिधायें हैं, इनसे तू समिद्ध हो, सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त हो। देखो, ये शुष्क समिधायें, जो सर्वथा निस्तेज थीं, अग्नि में पड़कर प्रज्ज्वलित हो उठी हैं। ऐसे ही मुझे भी आचार्य–रूप अग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान एवं सत्कर्मों से प्रज्ज्वलित होना है। मैं निपट अबोध–अज्ञानी बालक अप्रज्ज्वलित समिधाओं के समान ही निस्तेज हूँ, आचार्याधीन गुरुकुल–वास करके मुझे ज्ञान की ज्वालाओं से प्रदीप्त होना है।

आचार्य और ब्रह्मचारियों के मध्य में जलनेवाली हे यज्ञाग्नि! तू हम ब्रह्मचारियों को आयु प्रदान कर, हमारे अन्दर जीवन निहित कर। हम यही नहीं जानते कि इस संसार में किसलिए आये हैं और हमें कहाँ जाना है तथा जीवन किस प्रकार व्यतीत करना है। जीवन जीने की कला का बोध तू हमें करा। हे अग्नि! तू गुरुकुल की गुरु–शिष्य परम्परा का उज्ज्वल प्रतीक है। जो समिधाओं का और तेरा सम्बन्ध है, वही घनिष्ठ सम्बन्ध गुरुकुल में गुरु और शिष्यों का है। गुरुकुल के व्रतपालन, गुरुकुल की दिनचर्या, गुरुकुल के ज्ञानाग्नि–समिन्धन, गुरुकुल की कर्मपरायणता, गुरुकुल की तपस्या, गुरुकुल के संयम, गुरुकुल के योगानुष्ठान आदि सबका तू प्रतीक है। हे व्रतपति अग्नि! तुझमें समिधायें डालते हुए हम इन समस्त भावनाओं को अपने हृदय में धारण करते हैं।

हे गुरुकुलीय अग्निहोत्र की अग्नि! जहाँ तू हमें जीवन प्रदान करेगी, वहाँ हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान कर। हम ही अपने आचार्य को मार सकते या अमर कर सकते हैं। हम तुझ अग्नि में तपकर ऐसे जीवन के धनी बनें कि हमसे आचार्य की कीर्ति चारों ओर फैले। जब कोई हमें गुणी और सत्कर्मनिष्ठ देखकर पूछेगा कि ये किस आचार्य के शिष्य हैं, तब हमारे आचार्य का नाम अमर होगा। हम यदि आचार्य के नाम को अमर करने में किंचिन्मात्र भी कारण बन सकेंगे, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। हे गुरुकुल के अग्नि! तुम्हारी जय हो, हे गुरुकुल के पुण्यश्लोक आचार्य! तुम्हारी जय हो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु - भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में मन के मित्र और शत्रु की बात हो रही थी। मेरे मन! मेरा तू मित्र भी है और शत्रु भी है। मन किसी की नहीं सुनता। इसका एक ही उपाय है कि इस पर सवार हो कर नकेल डालकर दृढ़ता से पकड़े रखें और इसकी कोई बात न मानें। फिर देख यही मन जो तेरा शत्रु बना हुआ है, तेरा मित्र बनता है या नहीं।

ऐसा करेंगे तो देखेंगे कि मन परिवर्तित और आज्ञाकारी हो गया है। कितने ही बिगड़े कार्यों को सुधारकर हर काम तेज़ी से करता है। काम समाप्त करके उत्सुकता से ''ओ३म्'' के जाप में लग जाता है। मेरे मन अपने उस जीवन और इस जीवन को देख! भगवान का धन्यवाद कर कि तेरे अन्दर परिवर्तन पैदा हो गया।

अब आगे...

भक्त की पुकार

प्रियतम! न बल है, न शक्ति है। रोगी शरीर तेरी पूजा की सामग्री एकत्रित करने में भी असमर्थ है। तेरे इस मन्दिर की मरम्मत करने का भी अब साहस नहीं होता। न जप–बल, न तप–बल, न बाहु–बल, न धन–बल; किसके सहारे तेरे निकट पहुँचूँ? ऋषि यह कह गये हैं कि **"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"** अर्थात् बलहीन व्यक्ति आत्म–प्राप्ति नहीं कर सकता। तो फिर क्या मैं यहीं पड़ा रह जाऊँगा, इसी भँवर में गोते खाने के लिए? न मन्त्र आते हैं न तन्त्र, न यह जानता हूँ कि तेरी स्तुति कैसे करूँ, किन शब्दों में तुझे पुकारूँ। कोई शब्द ही मेरे पास नहीं है, फिर तेरे गुणों का वर्णन कैसे करूँ ? तेरा आह्वान कैसे किया जाता है, इससे मैं अनभिज्ञ हूँ। कहते हैं प्राण–अपान का संयोग कर देने से तू मिल सकता है। मुझे तो यह विधि भी नहीं आती। ध्यान कैसे लगाया जाता है, इससे भी मैं परिचित नहीं। कोई मुद्रा भी मैं नहीं जानता, न हठ–योग, न ध्यान–योग, न कर्म–योग, न ज्ञान–योग। किसी में भी मेरा अधिकार नहीं हो सका। किस विधि प्यारे तुझे पा सकूँगा, कोई मार्ग दिखलाई नहीं देता। रोना भी तो नहीं आता! यदि रोऊँ भी तो क्या कहकर रोऊँ? हाँ, केवल एक और निश्चित रूप से एक बात जानता हूँ कि तू मेरी माता है और ऐसी माता है जो क्लेश हरनेवाली है–

नहीं संयम, नहीं साधना,
नहीं यज्ञ–व्रत–दान।
मात भरोसे रहत है,
ज्यों बालक नादान।।

सा परानुरक्तिरीश्वरे। शाण्डिल्य ऋषि का भक्तिदर्शन (1–1–2)

मैंने यह भी तो सुना है माता ! कि जब तक तुम अपनी कृपा का पात्र किसी को नहीं बनातीं, तब तक न उसकी मेधा काम आती है, न वेद पढ़ा कुछ लाभ पहुँचाता है; तुम स्वयं जिसको चुन लो, उसी को तुम्हारे दर्शन का अधिकार मिलता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूँ स्वाम्।। कठोपनिषद् 1–22–3 ।। मुण्डक. 3–2–3 ।।

'यह आत्मा न वेद से पाया जा सकता है, न मेधा से, न बहुत सुनने से। हाँ, जिसको यह आप चुना लेता है, वही उसे पा सकता है, उसके लिए यह आत्मा अपना स्वरूप खोलता है।' तो मेरे ऊपर कृपादृष्टि कब होगी? मैं कब तक तेरे द्वार पर खड़ा माँ–माँ पुकारता रहूँगा ? माँ, तूने अपनी वाणी में कहा है–

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।
(ऋ. 4–33–11)

पूर्ण प्रयत्न करके जब तक कोई थक नहीं जाता, तब तक ईश्वर की मित्रता प्राप्त नहीं होती, और मैं तो अब थक गया हूँ न ! कितनी दूर से चला हूँ ! चला क्या हूँ रींगता आया हूँ। माँ, तेरे चरणों में आ पड़ा हूँ। सारे अंग चूर हो गये हैं। मेरे जलभरे नेत्र, मेरा मलिन मुख, मेरी काँपती हुई भुजाएँ, माता! क्या तेरे हृदय पर चोट नहीं करतीं? माँ तो अपने शिशु को दुःखी देखकर एक क्षण की भी देर नहीं करती, सौ काम छोड़कर भी उसे गोद में उठाकर प्यार करती है, पवित्र स्तनों से अमृत पिलाती है। माँ! मुझे भी ले–ले न अपनी गोद में ! उठा ले मुझे भी इस हीन–अवस्था से। पिला दे अमृत, पिला दे !

हर जननी ! मैं बालक तेरा,
काहे न औगन बगसहु तेरा।
सुन अपराध करे दिन केते,
जननी के चित रहे न तेते।।

पापों की गठरी कितनी भारी हो गई है ! अब तो उठाने की शक्ति नहीं रही। कितने हो भक्तों ने बतलाया है कि तू पापियों के पाप दूर हटा देता है, तू पतितों को उठाता है, तू अधर्मियों का उद्धार करता है। क्यों

जी ! ये सब बातें क्या ऐसे ही कही जाती हैं? यदि ऐसे ही नहीं तो मुझसे अधिक दयानीय और कौन होगा? पतितपावन ! मेरे–जैसे पतित का उद्धार करके तुम बहुत बड़े पतितोद्धारक कहलाओगे। यदि मेरे द्वार से केवल अच्छे मनवाले और योगियों को ही शिक्षा मिलती है, केवल ज्ञानी ही तृप्त होते हैं, तो फिर मैं क्या व्यर्थ चिल्ला रहा हूँ? कहो तो सही, सच्चे साहब ! स्वस्थ पुरुष या स्त्री को वैद्य के पास अथवा अस्पताल में जाने की क्या आवश्यकता है? धनी भीख माँगने धनी के दरबार में क्यों जाये? जिसके वस्त्र ठीक हैं, उसे दर्ज़ी का दरवाज़ा देखने की क्या ज़रूरत है? फट गये हैं जिसके कपड़े काँटों से उलझ–उलझकर, वही दर्ज़ी को ढूँढ़ता फिरेगा। जिसके मन–रूपी कपड़े हो गये हैं मैले, वही धोबी के पास जायेगा। ओ धाबी ! मैं मैले ही कपड़े लेकर तेरे पास आया हूँ–

धोबिया, दाग दिलाँ दे धो दे!

मेरा मन रोगी है ओ परम–वैद्य ! इसकी चिकित्सा कर दे। मेरे आर्त्तनाद को सुन और मेरी पीड़ा को हर दे। यदि तूने भी गुण और अवगुण देखकर ही भिक्षा देनी है तो तुझे 'समदर्शी' कहनेवाले यह वचन बोलने से पहले सौ बार सोच लिया करेंगे। सूरदास तो आपके इसी गुण को देखकर इकतारा हाथ में लिए रो–रोकर पुकार उठा था–

अवगुण चित न धरो प्रभु मेरे!
अवगुण चित न धरो!

समदर्शी है नाम तिहारो,
चाहो तो पार करो।।
इक नदिया इक नाल कहावत,
मैलो ही नीर भरो।
जब मिलकर दोउ एक वर्ण भयो,
सुरसरि गंगा नाम परो।।
इक लोहा पूजा में राख्यो,
इक घर बधिक कसाई परो।
पारस गुण–अवगुण नहीं देखत,
कंचन करत खरो।।
प्रभु जी, मेरे अवगुण चित न धरो।

यदि अपने तोल–माप ही से काम लेना है तो फिर हमें कोई और द्वार बतलाओ जहाँ हमें भिक्षा मिल सके, परन्तु–

तेरे दर को छोड़कर हम बेनवा जायें कहाँ?
या बता दे और कोई अपने–जैसा घर हमें।।

नहीं छोड़ेंगे तेरी चौखट। अब इसी द्वार पर प्राणों का अन्त होगा। कब तक तू नहीं सुनेगा? हमें भजन करना नहीं आता, न सही। हमें गुण–वर्णन की विधि नहीं आती तो क्या हुआ ! हम तो तुझे पुकारते ही चले जायेंगे, तेरा ही नाम, हाँ तेरा ही नाम, और कुछ नहीं हम जानते, केवल तेरा नाम–

ओम् का सिमरन नित्य कर,
जिस विधि सिमरा जाय।
कभी तो दीनदयाल जी,
बोलेंगे मुसकाय।।

और यदि तेरे द्वार से हमें उस समय तक भिक्षा नहीं मिलती जब तक हमारी त्रुटियाँ दूर नहीं हो जायेंगी, तो फिर चलो यही काम पहले कर दो, त्रुटियाँ दूर करनेवाला भी तू ही है। तूने ही तो वेद में कहा है कि कभी भी आ बने तो मुझे पुकारो। अब तुझे पुकार रहे हैं। ले, तेरी पवित्र वाणी में अपनी टेर सुनाते हैं–

यदि दिवा यदि नक्तमेनाᳬसिचकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँ हसः।।
यजु. 20–15।।

"जो दिन में, जो रात्रि में, अज्ञात अपराधों को हम लोग करें, उस समग्र अपराध और दुष्ट व्यसन से हमें वायु के समान पृथक् कर दे।"

यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽएनाᳬसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँ हसः।।
यजु. 20–16।।

"यदि जागृत अवस्था में और यदि सोते हुए मैं किसी पाप को करूँगा अथवा करने की इच्छा रखता हूँ तो उस समग्र पाप और प्रमाद से सूर्य के समान मुझको मुक्त कर।"

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं
यदेकस्याधि
धर्मणि तस्यावयजनमसि।।
यजु. 20–17।।

"हम लोग जो गाँव में, जो जंगल में, जो सभा में, जो मन में, जो शूद्र में, जो स्वामी या वैश्य में, जो एक के ऊपर धर्म में तथा जो अन्य अपराध करते हैं अथवा करनेवाले हैं, उन सबसे मुक्ति के साधन आप ही हैं।"

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो
वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्धातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।।
यजु. 36–2।।

'जो मेरे नेत्र की वा अन्तःकरण की न्यूनता वा मन की व्याकुलता है, उसको बृहस्पति परमेश्वर मेरे लिए पूर्ण करे। जो सब संसार का रक्षक है, वह हमारे लिए कल्याणकारी होवे।"

कहो, अब तो मेरी पुकार सुनोगे न! तेरे ही वेद के अन्दर, तूने ही अपने जिम्मे जो कर्त्तव्य लिया है, उसी की याद तुझे दिला रहा हूँ। हम पाप से सर्वथा पृथक् रहना चाहते हैं, परन्तु ये फिर भी हो जाते हैं। अतएव तेरे सम्बन्धी जितने पाप होनेवाले हैं या जिनकी सम्भवना है उससे तो हमें अलग कर दे और हमारे मन में जो गड्डे पड़ गये है, भगवन्, तू ही उन्हें भरने में समर्थ है। भर उन्हें, कर दे दूर त्रुटियाँ और एक बार ऐसी दृष्टि दे दे, जो तुझे ही देखती रहे, हाँ, तुझे ही !

वार्षिक चुनाव

आर्य समाज सज्जन नगर

प्रधान	श्री हुकमचन्द शास्त्री
उपप्रधान	श्री भुवनेश जोशी
मन्त्री	श्री हेमांग जोशी
कोषाध्यक्ष	श्री अशोक उदावत
पुस्तकालयाध्यक्ष	आचार्य प्रमोद शास्त्री

नवसम्वत्सर की महत्ता

● वेद प्रकाश शास्त्री

मंगलं करोतु कल्याणं आरोग्यं धनसम्पदः।
वर्धयतु 'वेद'–ज्योतिश्च शुभंकरो भवतु नवसंवत्सरः।।

मंगल करे अरु कल्याण भी,
दे आरोग्य औ धनसम्पदा।
'वेद'–ज्योति का वर्धन करे,
नवसंवत्सर हो शुभकारी सदा।।

भारतीय संस्कृति में विभिन्न पर्वोत्सव हार में मोतियों की भांति पिरोए हुए हैं। जैसे मोतियों को हार से पृथक् नहीं किया जा सकता, वैसे ही इन पर्वों को भारतीय संस्कृति से पृथक् नहीं किया जा सकता। ये पर्व हमारे जीवन में सुख, शान्ति, हर्षोल्लास, कर्त्तव्य परायणता, निरभिमानता एवं नवप्रेरणा का संचार करते हैं।

आज यह नवसंवत्सर अनेक धार्मिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों को अपने अन्दर समाविष्ट किए हुए विगत वर्ष में किए गए सत्–असत् कर्मों के प्रति आत्मचिन्तन का सन्देश लेकर उपस्थित है। हे नवसंवत्सर! हे नववर्ष ! तुम्हारा यह शुभागमन सम्पूर्ण मानव जाति एवं समस्त प्राणियों के लिए मंगलमय हो।

संवत्सर की महत्ता एवं उद्देश्य

1. सृष्टि संवत्सर

सृष्टि की उत्पत्ति चैत्रमास के शुक्लपक्ष प्रतिपदा को हुई थी। अतः सृष्टि संवत्सर का प्रारम्भ इसी समय हुआ था। ज्योतिष के हिमाद्रि ग्रंथ के अनुसार–

चैत्रो मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु तदा सूर्योदये सति।।

चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदा को सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही प्रथम सूर्योदय होने पर मेष संक्रान्ति और काल के विभाजन वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न, पल, विपल आदि एक साथ प्रारम्भ हुए। उसी समय से यह दिवस सृष्टि संवत्सर के नाम से प्रचलित हुआ।

आर्य ज्योतिष–शास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थ 'सिद्धान्त शिरोमणि' के अनुसार–

लंकानगर्यामुदयाच्च भानोः तस्यैव वारं प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेः दिन मास वर्ष युगादिकानां युगपत् प्रकृतिः।।

लंका नगर में सूर्योदय के समय, उसी के बाद अर्थात् रविवार को, चैत्रमास शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में 'दिन–मास–वर्ष–युग' सभी एक साथ प्रचलित हुए। इसी समय से ब्राह्मदिन, सृष्टि संवत्, वैवस्वतादि मन्वन्तर गणना, सत्य–त्रेता–द्वापर–कलियुग के संवत्, विक्रम संवत् आदि की गणना की जाती है।

2. सृष्टि के आदि में वेदज्ञान

वेद मानव संस्कृति, धर्म, कर्म, उपासना, ज्ञान–विज्ञान के मूल आधार हैं। वेदों का ज्ञान सदैव सत्य, सनातन, शाश्वत, अपरिवर्तनीय, सार्वभौम, अपौरुषेय एवं सर्वमान्य है। ऋग्, यजु, साम, और अथर्व–इन चारों वेदों का ज्ञान उस परम पिता परमात्मा ने मानव सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों के हृदय में प्रकाशित किया था। अतः वेदों का प्रादुर्भाव भी मानव सृष्टि के आदि में हुआ था जिससे सूर्य के प्रकाश के साथ–साथ वेदों के ज्ञान का प्रकाश भी चहुंदिश विस्तृत हुआ।

3. युगाब्द का आरम्भ

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग–इन चारों युगों का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। अतः इन युगाब्दों का अपना महत्त्व है। आजकल कलियुग चल रहा है जिसके 5114 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और आज (2014 ई.) 5115 वाँ युगाब्द आरम्भ हो रहा है।

4. विक्रमी संवत्

भारतीय समाज पर काले बादलों एवं अत्याचारों की आंधी के रूप में उमड़े शक–हूणों पर विजय प्राप्त करने वाले प्रजापालक, स्वर्ण युग निर्माता, न्यायशील, परोपकारी, महान् सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की महत्वपूर्ण विजयों के उपलक्ष्य में विक्रमी संवत् का शुभारम्भ हुआ। आज भी यह संवत् हमें अन्याय पर विजय प्राप्ति के लिए प्रेरित कर रहा है।

5. आर्य समाज स्थापना दिवस

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द जब इस पावन धरा पर अवतीर्ण हुए, उस समय धर्म, सभ्यता, संस्कृति की विलक्षण अवस्था हो गयी थी। सत्य सनातन वैदिक धर्म के ज्ञान, कर्म और उपासना का स्थान नवीन मतों के आडम्बर, मिथ्या विश्वास, तान्त्रिक जादू टोना और जड़पूजा ने ले लिया था। मनुष्य मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण की मिथ्या सिद्धियों में फंस चुका था। लोग जीवित माता, पिता, आचार्य, अतिथि का आदर–सम्मान, पूजा, सत्य भाषण आदि सच्चे तीर्थों को भूल कर जल, स्थल आदि

क्रमशः....

को ही तीर्थ मान बैठे थे। गुण, कर्म के आधार पर व्यवस्था लुप्त हो चुकी थी। सच्चे योगियों का स्वरूप शास्त्रों में ही रह गया था।

दूसरी ओर यूरोप से उठी हुई पाश्चात्य सभ्यता की प्रबल आंधी प्राचीन सभ्यता–संस्कृति को निगलती जा रही थी। भारतीय प्रजा गौरांग–प्रभुओं का रहन–सहन, खानपान तथा उठने–बैठने तक की नकल करने में अपना गौरव समझती थी। भूगोल, खगोल, रसायन तथा पदार्थ विज्ञान आदि सारी विद्याओं के आविष्कर्ता भी पाश्चात्य विद्वान् ही समझे जाते थे।

एक ओर जहां पुराने आचार–विचार के लोग नाम मात्र के ब्राह्मणों एवं संस्कृत के वाक्य को "ब्रह्मवाक्यम्" कहकर परम प्रणाम मानते थे; वहां दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित एवं आलोकित नवयुवक तर्करहित ब्रह्मवाक्यों को भी सुनने को तैयार न थे। परिणाम स्वरूप नई पौध के लोग नास्तिक और भोगवादी बन कर प्राचीन सत्य धर्म, सभ्यता, संस्कृति से बिल्कुल विमुख हो रहे थे।

ऐसी विषम परिस्थितियों में महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। महर्षि ने गुरुवर विरजानन्द के सान्निध्य में रहकर व्याकरण, वेदादि शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् गुरुदक्षिणा के रूप में भारत भूमि से अज्ञान, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, आडम्बर, पाखण्ड आदि को हटा कर वेदों का सन्देश जन–जन तक पहुंचाने का वचन देकर गुरुदेव की कुटिया से निकल पड़े।

वैदिक धर्म के सतत प्रचारार्थ और मानव मात्र के उपकारार्थ मुम्बई में डॉ. मानिक चन्द की वाटिका में चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा विक्रमी संवत् 1932 तदनुसार 7 अप्रैल, 1875 को महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की थी जो कि आज भी उनके सन्देश को जन–जन तक पहुँचाने हेतु प्रयासरत है।

आज आर्य समाज स्थापना दिवस के इस पावन पर्व पर हम सभी वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार, अन्धविश्वास और रूढ़िवाद के विनाश और राष्ट्रीय एकता का व्रत लें, तभी इस पर्व को मनाने की सार्थकता है। प्रभु सभी आर्यों को ऐसी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करे जिससे वे इस पुनीत कार्य में सफल हो सकें। हमारी यही मंगल कामना है।

6. नववर्ष का आगमन

सामान्यतः सिद्धान्त की बात यह है कि नववर्ष के आगमन के समय कुछ न कुछ नवीनताएं अवश्य होनी चाहिए। ये नवीनताएं ऋतुओं एवं वनस्पतियों में आने वाले परिवर्तन के कारण हो सकती हैं।

चैत्रमास में वसन्त ऋतु का आगमन होता है। इस ऋतु में प्रकृति की शोभा अनुपम होती है। निरभ्र आकाश अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल होता है। पृथिवी पर मखमल के समान बिछी हुई हरी–हरी घास मन मोह लेती है। पेड़–पौधों एवं लताओं पर रंग–बिरंगे खिले हुए फूलों को देखकर मन की कली भी खिल उठती है।

यह ऋतु चैत्र और वैशाख इन दो महीनों में होती है:–

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू।।

यजु. 13/25

वेद में प्रथम मास का नाम 'मधु' है। 'चित्रा' नक्षत्र के कारण इसका नाम 'चैत्र' है। वेद का मधु और ज्योतिष का चैत्रमास एक ही है। इसी प्रकार वेद में 'माधव' और ज्योतिष में 'वैशाख' एक ही मास के नाम हैं। इन्हीं दो मासों को मिला कर वसन्त ऋतु होती है।

मुखं वा एतद् ऋतूनां यद् वसन्तः।।

तै.ब्रा. 1–1–2–6,7

तस्य ते (संवत्सरस्य) वसन्तः शिरः।।

तै.ब्रा. 3/10/4/1

वसन्तु ऋतु में न अधिक ठंड होती है, न अधिक गर्मी। मौसम सुखदायी होता है। मन्द–मन्द गतिशील पवन अपने स्पर्श से आनन्दित एवं रोमाञ्चित कर देती है। वातावरण न अधिक शुष्क होता है, न अधिक आर्द्र। इन्हीं कारणों से वसन्त को ऋतुराज कहा जाता है। अतः इसी वसन्त ऋतु में नववर्ष का शुभारम्भ मानना वैज्ञानिक दृष्टि से भी उचित है।

वसन्त ऋतु में वनस्पतियों में भी नवीनता आ जाती है। उनके पुराने पत्ते सूख कर गिर जाते हैं और नई कोपलें निकलती हैं। पत्तों का गिरना पतझड़ कहा जाता है जो शिशिर ऋतु में होता है। इसे नवीनता नहीं कह सकते। नई कोपलों का निकलना ही नवीनता का द्योतक है जो वसन्त ऋतु का स्पष्ट लक्षण है। वसन्त ऋतु के अतिरिक्त किसी अन्य समय पर वनस्पतियों में इतना व्यापक एवं विशेष परिवर्तन नहीं होता। अतः वनस्पतियों की दृष्टि से चैत्र में ही नववर्ष का प्रारम्भ मानना चाहिए।

7. ईस्वी सन् की नववर्ष से तुलना

पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंग कर ऐसा प्रतीत होता है कि हम भारतीयों ने अपना स्वत्व ही खो दिया है। विश्व में अपनी भी एक विशेष पहचान है, अपना राष्ट्र है, अपनी सभ्यता और संस्कृति है। अपना संवत् एवं वर्ष है, जिसे हम भूलते जा रहे हैं और ईस्वी सन् प्रारम्भ को ही भारतीय नववर्ष का प्रारम्भ मान बैठे हैं।

ईस्वी सन् जनवरी मास में प्रारम्भ होता है परन्तु इस महीने में कड़ाके की सर्दी पड़ती है जो कि पहले से ही आरम्भ हो चुकी होती है। वनस्पतियों में भी कोई विशेष परिवर्तन या नवीनता दृष्टिगोचर नहीं होती। इस प्रकार जनवरी से नववर्ष का प्रारम्भ मानने की कोई तुक नहीं है। जनवरी मास से नववर्ष मनाने की परम्परा मात्र चार–पांच शताब्दियों से चल रही है। अतः इसे प्राचीन परम्परा मान कर स्वीकार नहीं किया जा सकता।

चार–पांच शताब्दियों से पूर्व ईस्वी सन् का प्रारम्भ भी अप्रैल मास से माना जाता था, जो वसन्त ऋतु में पड़ता था। जनवरी की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त था। परन्तु कालान्तर में यह परम्परा बदल गई और नववर्ष का प्रारम्भ जनवरी से माना जाने लगा।

इतना होने पर भी **"वित्तीय वर्ष"** के रूप में आज भी ईस्वी सन् का प्रारम्भ अप्रैल मास से माना जाता है जो कि अपनी प्राचीनता का द्योतक है।

आज हमने अपने दैनिक जीवन में ईस्वी सन् को अधिक महत्ता प्रदान कर रखी है, जबकि इसकी अपेक्षा विक्रमी संवत् कहीं अधिक श्रेष्ठता, प्राचीनता और विशिष्टता को धारण किए हुए है।

उपर्युक्त इन तथ्यों से स्पष्ट है कि चैत्रमास शुक्ल पक्ष प्रतिपदा को ही नववर्ष आगमन का पर्व उत्साह पूर्वक मनाना चाहिए।

8. आत्म चिन्तन का पर्व

प्रत्येक नववर्ष हमारे लिए आत्मचिन्तन का पर्व होता है। हम सम्पूर्ण वर्ष में किए गए कार्यों का निरीक्षण करें। शुभ कार्यों को धारण करें और अशुभ कार्यों को छोड़ने का संकल्प लें।

व्यापारी वर्ग–वर्ष भर में किए गए व्यापार में लाभ–हानि पर विचार करें। आई हुई त्रुटियों को दूर करते हुए उन्नति की ओर अग्रसर हों।

शिक्षा का नवसत्र–इसी समय अप्रैल मास में प्रारम्भ होता है। अतः छात्र भी पिछले परीक्षा परिणाम पर विचार करते हुए और अधिक सक्रियता, लगनशीलता एवं परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करने को व्रत लें।

मंगल कामना

यह नव संवत् बन्धु–बान्धव, सम्बन्धीजन, इष्टमित्र, नर–नारी सभी के लिए प्रेम, गौरव, समृद्धि, उन्नति एवं प्रसन्नता से परिपूर्ण हो। इस परम पुनीत अवसर पर हम सभी सेवा, परोपकार, सदाचार, सद्व्यवहार, मानव कल्याण, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और प्राचीन गौरव में वृद्धि करने का संकल्प लें।

नवसंवत्सर की नवल चांदनी,
जग में नवसंचार भरे।
नव आशा के कलश सजा कर,
नित मंगल संसार करे।।

शास्त्री भवन, 4–ई, कैलाश नगर, फाजिलका, पंजाब

☞ *पृष्ठ 01 का शेष*

दिल्ली में महात्मा हंसराज पावन जयंती ...

राहत तथा पुनर्वास कार्य में जुट जाती है।'' श्री कोहली ने अपने गरिमापूर्ण सम्बोधन में यह भी स्पष्ट किया कि परमार्थ के मार्ग पर चलना ही धर्म है। महात्मा हंसराज ने परमार्थ का मार्ग अपना कर सब को धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया।

समारोह में डा. सुधीर कुमार सोपोरी तथा श्री रिचर्ड रेखी को विशेष रूप से सम्मानित किया गया। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. सुधीर कुमार सोपोरी तथा के. पी. एम. जी. के मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री रिचर्ड रेखी, दोनों ही डी.ए.वी. के पुराने विद्यार्थी हैं। श्री सोपोरी ने श्रीनगर डी.ए.वी. तथा श्री रेखी ने हंसराज कॉलेज, दिल्ली में अपनी पढ़ाई लिखाई की। इस वर्ष आयोजित समर्पण दिवस समारोह में 10 वैदिक विद्वानों एवं 9 आर्य संन्यासियों को सम्मानित किया गया। ये संन्यासी और विद्वान देश के विभिन्न भागों में वैदिक चिंतन एवं आर्य समाज के सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार करते है।

डी.ए.वी. कॉलेज, अमृतसर के प्रिंसिपल श्री राजेश कुमार, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, प्रताप विहार, गाजियाबाद की प्रिंसिपल श्रीमती आभा गंगल एवं क्षेत्रीय निदेशक तथा डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, नवी मुंबई के प्रिंसिपल श्री जोस कुरियन को 'महात्मा हंसराज सम्मान' से सम्मानित किया गया। 16 विद्यार्थियों को शैक्षिक, सांस्कृतिक गतिविधियों एवं खेल–कूद में अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर उल्लेखनीय उपलब्धियों के लिए पुरस्कृत किया गया। इनमें विशेष योग्यता प्राप्त दो विद्यार्थियों को उनके विशिष्ट प्रतिभा प्रदर्शन के लिए पुरस्कृत किया गया। महात्मा हंसराज के जीवन पर आधारित नृत्य नाटिका **'चरैवेति–चरैवेति'** की प्रस्तुति 'समर्पण दिवस' का मुख्य आकर्षण थी।

इस नृत्य नाटिका में लगभग 1500 विद्यार्थियों ने अपने नृत्य और अभिनय कौशल से अद्भुत समां बांध दिया। इसका नृत्य नाटिका का निर्देशन सुप्रसिद्ध कोरियोग्राफर श्री उदय साहा ने किया। नृत्य नाटिका का आलेख श्री अजय ठाकुर ने लिखा है।

कार्यक्रम का प्रारंभ दीप प्रज्ज्वलन एवं डी.ए.वी. गान से हुआ। 'समर्पण दिवस' समारोह में आर्य संत चैतन्य मुनि ने आशीर्वाद दिया। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि डी.ए.वी. आंदोलन तथा आर्य समाज श्री पूनम सूरी के नेतृत्व में समाज को नई दिशा प्रदान कर रहे हैं। आज भी देश में इस आंदोलन को और भी अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता है। इस समारोह में देश भर से 10000 से अधिक संख्या में आए वैदिक विद्वानों, आर्य संन्यासियों, बुद्धिजीवियों, शिक्षाविदों एवं विद्यार्थियों ने भाग लिया।

इस अवसर पर महात्मा हंसराज के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित 'आर्य जगत्' और 'आर्यन हेरिटेज' के विशेषांकों का भी लोकार्पण किया गया। सुरुचिपूर्ण ढ़ग से आयोजित 'समर्पण दिवस' एक अविस्मरणीय याद बन गया।

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका:–हिंसक प्राणियों साँप, बिच्छू, चींटी, काकरोच आदि के साथ कैसा व्यवहार करें?

समाधान–जहां तक संभव हो, इनको न मारें। झाड़ू मारके इनको हटा दो, बाहर कर दो। घर में कौए घुसते हैं, कबूतर आते हैं, चिड़िया आती हैं, हम बाहर निकाल देते हैं। चोर आता है, उसको भी बाहर निकाल देते हैं। बिच्छु, साँप आयेगा, उनको भी बाहर निकाल देंगे, मारेंगे नहीं। जहाँ तक हो सके, इन प्राणियों को नहीं मारना चाहिए।

लोग सांप को देखते ही मारते हैं। अगर उनसे पूछें कि क्यों भाई, क्यों मारते हो? तो जवाब देते हैं–ये साँप काट लेग. ा। हम अगर उनसे पूछें, कि अभी काटा तो नहीं न। तो फिर क्यों मारते हो? तो वे कहते हैं कि 'साहब इसकी संभावना है।' तो इसका जवाब है कि 'संभावना के आधार पर आप किसी को दण्ड दे सकते हैं क्या'? न्याय का नियम यह है कि जब तक कोई अपराध न कर ले, तब तक उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता है। हम रेल में चलते हैं, बस में चलते हैं, कितने सारे लोग चलते हैं, तो संभावना तो किसी की भी हो सकती है, कि कोई भी जेब काट सकता है। क्या बिना जेब काटे ऐसे केवल संभावना के आधार पर सबको पकड़ के जेल के. अंदर कर देंगे? ऐसा तो नहीं कर सकते। तो केवल संभावना के आधार पर दंड नहीं दे सकते। जब तक कि वो अपराध न कर लें।

अपनी सुरक्षा रखो, खिड़कियों में जाली लगाओ, कौओं, कबूतर, चिड़ियों को मत घुसने दो। मच्छर काटते हैं, मच्छर दानी लगाओ, तो जहाँ तक हो सके, इनको नहीं मारना चाहिए। देखिए, चौबीस साल से हम जंगल में रहते हैं। (हम जंगल में जरूर रहते हैं पर पूरे जंगली नहीं हैं) यहां आस–पास में काफी सांप रहते हैं। और खूब सांप आगे–पीछे, इधर–उधर घूमते रहते हैं। तालाब की तरफ खूब साँप आते हैं। हमने आज तक एक भी सांप नहीं मारा और न साँप ने हमको काटा। हम उनको नहीं छेड़ते, वो हमको नहीं छेड़ते। वो चु. पचाप चले जाते हैं। हम अपना चुप–चाप चले जाते हैं, कुछ भी नहीं करते। आप भी ऐसा ही करने का प्रयत्न करें।

बिल्कुल इमरजेन्सी हो, बहुत मुसीबत आ रही हो, तो मजबूरी में उनको हटा सकते हैं। और मान लो, मारने की बहुत मजबूरी हो, और आपको ऐसा लगता हो कि साँप बिल्कुल आपके ऊपर आक्रमण करने को तैयार है। और आपको अपनी जान का खतरा है, तो आप भी मार सकते हैं, पर द्वेष के कारण नहीं मारना। अपनी रक्षा के लिए तो मारेंगे तो उसमें थोड़ा दण्ड तो मिलेगा, पर ज्यादा नहीं मिलेगा। द्वेष के कारण मारेंगे तो ज्यादा दण्ड मिलेगा। अपनी रक्षा करने का अधिकार सबको है, इस प्रकार से जहाँ तक संभव हो सके, वहाँ तक किसी को न मारें।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

विश्व शांति का स्रोत वैदिक धर्म

● साध्वी डॉ. उत्तमा यति

इस प्राणी जगत् में यदि कोई सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वोत्कृष्ट प्राणी है तो वह मानव है। यह मानव जीवन ही सर्व शक्तियों का केन्द्र तथा सर्व सुखों का घर है। हमारी आत्मा मानव जीवन को पाकर ही उन्नति की चरम सीमा तथा जीवन के लक्ष्य (मोक्ष) तक को भी पा सकता है। आत्मा के अन्दर जो दैवी शक्तियाँ हैं उनका पूर्ण विकास इसी मानव जीवन में ही होना सम्भव है, किन्तु मानवरूपी कल्प वृक्ष विकसित, पुष्पित तथा फलित तभी हो सकता है, जब इसे धर्मरूपी शीतल जल से बार–बार सिंचित किया जाये।

बिना धर्म के यह सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन भी निःसार तथा नीरस है। आत्माहीन प्राण ी मुर्दा के समान है। उसी प्रकार धर्महीन जीवन भी मुर्दा के समान है। सुख, शांति को प्राप्त करना तथा विश्व में सुख और शांति का साम्राज्य स्थापित करना ही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है, किन्तु **मनुष्य अपने इस जीवन के लक्ष्य को भी तभी प्राप्त कर सकता है जब वह धर्म का आश्रय ले, बिना धर्म के न तो वह मनुष्य स्वयं सुखी बन सकता है और न विश्व को सुखमय बना सकता है। संसार के क्षणिक पदार्थ में लिप्त न होकर उनका त्याग पूर्वक उपभोग करना ही सुख और शांति का मूल मंत्र है।** विलासमय जीवन कभी सुख और शांति का उपार्जन नहीं कर सकता। जिसका जीवन स्वयमेव सुखमय और शांत नहीं भला वह विश्व को सुख और शांति का संदेश कैसे सुना सकता है।

विश्व में धर्म ही एक वस्तु है, जो मानव जीवन को विलासिता की दासता से छुड़ाकर संसार के पदार्थों का अनासक्ति अर्थात् त्याग पूर्वक उपभोग करना सिखाता है। अतः धर्म ही सुख और शांति का मूलमंत्र है। ऋषि दयानन्द के कथनानुसार सच्चा धर्म वह है, जिसका कोई विरोधी नहीं। इसलिए आदिकाल से लेकर आर्यावर्त तक जितने भी ऋषि, मुनि, संत, महात्मा और सुधारक हुये हैं, उन्होंने धर्म का आश्रय लेकर ही धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्रांतियाँ की हैं। धर्म ही उनके सुधार का मूलमंत्र रहा है, किन्तु खेद से लिखना पड़ता है कि ऐसे परम पुनीत परजन हिताय धर्म से आज समाज उदासीन होता जा रहा है। न केवल उदासीन ही परन्तु धर्म और ईश्वर को घृणा की दृष्टि से देखने लगा है। प्रश्न उठता है कि आज धर्म के नाम पर इतनी भ्रांति तथा उदासीनता क्यों? मेरे विचार में आज धर्म विमुखता के दो ही मुख्य कारण हैं, एक तो वर्तमान भोगवाद तथा दूसरा धर्म के वास्तविक तथा यथार्थ स्वरूप का न समझना।

वर्तमान युग भोग तथा विलासिता का युग है। खाओ, पियो तथा मौज उड़ाओ यही सभ्य जगत् का मुख्य ध्येय बन गया है। भले ही इस कार्यपूर्ति के लिए दूसरों का गला भी क्यों न काटना पड़े। जो मानव जीवन किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें विधाता से मिला है आज उसी मानव जीवन का उद्देश्य केवल नानाविध भोगों का भोग करना तथा विलासितामय जीवन व्यतीत करना ही रह गया है। यही कारण है कि **विलासिता में विचरने वाले लोगों ने धर्म को अपना विरोधी समझ लिया है। आज विश्वव्यापी वैमनस्य तथा संशयमय जीवन व्यतीत करना ही शेष रह गया है।** आज का विश्वव्यापी वैमनस्य तथा संग्राम धर्मानुसार सच्ची राजनिति से कोसों दूर है। **धर्म के वास्तविक स्वरूप की अनभिज्ञता के कारण आजकल धर्म के नाम पर प्रचलित पंथों, मजहबों तथा सम्प्रदायों को ही धर्म समझ लिया गया है।** यही कारण है कि जब ये मजहब या सम्प्रदाय किसी भी प्रकार का अनुचित कार्य व अमानुषिक कार्य करते हैं, तो अनभिज्ञ लोग उसे धर्म की ओर धकेल देते हैं। यदि कोई सम्प्रदाय या मजहब देशोन्नति वा राष्ट्र कल्याण में बाधक होता है तो राष्ट्रोत्थान प्रिय पुरुष धर्म को ही इस का दोषी या अपराधी ठहराते हैं। यदि कोई सम्प्रदाय या मजहब रूढ़िवाद का दास बनता है तो इसके लिए धर्म को ही दोषी ठहराया जाता है। यदि अन्यत्र देशों में धर्म के नाम पर रक्तपात होता है या एक ही सम्प्रदाय में परस्पर अत्यधिक अत्याचार होते हैं तो उसे भी धर्म की ओर ही धकेल दिया जाता है परिणाम स्वरूप विश्व शांति प्रिय और पुरुष भी धर्म के नाम से ग्लानि करने लग जाते हैं। **एक देश धर्म का सच्चा जिज्ञासु भी जब धर्म की वर्तमान दुर्दशा को देखता है तो वह भी धर्म से उदासीन हो जाता है। जब वह देखता है कि धर्म व धर्म के नाम पर अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं, और धर्म के नाम पर ही निर्दोष तथा निरपराध प्राणियों का वध हो रहा है। स्वार्थी, आलसी, प्रमादी तथा निकम्मे लोग धर्म के नाम पर ही अन्धश्रद्धालु भोले भक्तों के माल पर मौज मार रहे हैं।** तात्पर्य यह है कि संसार में कौन–सी ऐसी बुराई है जो धर्म के नाम पर न की जा रही हो। यहाँ तक कि दुराचार तथा व्यभिचार तक भी धर्म के ही नाम पर ही किये जा रहे हैं। धर्म की यह दुर्दशा देखकर सत्य तथा शांति की अभिलाषी आर्य जाति भी धर्म से विमुख हो जाती है। जहाँ उसे धर्म से सच्ची शांति मिलनी चाहिये थी, वहाँ वही धर्म उसकी अशांति का कारण बन जाता है। वह उल्टा धर्म का विरोधी बन जाता है। वह धर्म का जिज्ञासु होता हुआ भी उल्टा धर्म से विमुख हो जाता है। किसी उर्दू के कवि ने ठीक ही कहा है:–

खुदा के बन्दों को देखकर ही खुदा से मुनासिर हुई है दुनियाँ, कि ऐसे जिस खुदा के बन्दे हैं वह अच्छा खुदा नहीं है।

अब यह देखना है कि क्या वास्तव में धर्म ही उपर्युक्त बुराइयों तथा रूढ़ियों का जन्मदाता है। आइये थोड़ा हम धर्म शब्द पर विचार कर लें। धर्म शब्द का शाब्दिक अर्थ यह है कि जिसको धारण किया जाये। दूसरे शब्दों में जो धारण करने योग्य है। अर्थात् धर्म किसी विशेष प्रकार की रूढ़ियों, रस्मों, रिवाजों तथा बाह्य कृत्रिम आडम्बरों का नाम नहीं प्रत्युत उस कर्तव्य तथा ड्यूटी का नाम है जो धारण करने योग्य है, जिसको धारण कर मनुष्य, मनुष्य बन कर इहलोक तथा परलोक में स्वयं सुख तथा शान्ति को धारण कर प्राणिमात्र के सुख तथा शान्ति का कारण बने, इसलिए महाभारत में कहा है–

धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मो हि धारयते प्रजा

अर्थात् धारण करने योग्य होने से धर्म का नाम धर्म है और यही वास्तव में प्रजाओं

को धारण करता है, अर्थात् उनके सुख और शान्ति का मूल कारण है। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्म वास्तव में राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं, प्रत्युत सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय प्रजा के धारण करने अर्थात् प्रजा के सुख और शान्ति का मूल कारण है। खेद है कि आज हम धर्म का प्रजा के सुख और शान्ति के मूल कारण के बहिष्कार करने में अग्रसर हो रहे हैं और इसे ही हम धर्म निरपेक्ष राष्ट्र कहते हैं।

सम्भवतः प्रिय पाठक पूछेंगे कि वास्तव में यदि धर्म का यही उदात्त अभिप्राय है, जो आज धर्म के नाम पर इतना अत्याचार तथा अशान्ति क्यों? इसका निश्चय में उत्तर यही है कि जिस वस्तु को धर्म समझ रखा है वह वास्तव में धर्म है ही नहीं। आज हमने कुछ दकियानूसी रूढ़ियों, रिवाजों, चिन्हों तथा आडम्बरों के नाम को ही धर्म समझ लिया है, किन्तु यदि उपर्युक्त बाह्य चिन्हों तथा रूढ़ियों आदि का नाम ही धर्म है तो धर्म शब्द के अन्दर इतने उदात्त विचार तथा भावनाएँ निहित न होतीं।

वास्तव में धर्म का संबंध हमारी आत्मा तथा कर्त्तव्यों से है न कि रूढ़ि रिवाजों से। अपितु जिन कर्त्तव्य कर्मों से मानवीय आत्मा स्वस्थ, सुदृढ़, पवित्र तथा बलवान बन कर इहलोक में सुख तथा शांति का भागी बने, और अंत में मोक्ष मार्ग में प्रवेश करने का अधिकारी बन सके, वही धर्म है। इसीलिये प्राचीन ऋषियों ने जो धर्म के लक्षण किये हैं उनमें रूढ़िवाद या बाह्य आडम्बरों का लेशमात्र भी स्थान नहीं मिलता। महर्षि मनु ने जो धर्म का स्वरूप बताया है वास्तव में वही धर्म का सच्चा स्वरूप है।

धृति क्षमा दमोस्तेयम्,
शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो
दशकं धर्मलक्षणम्।।

आपत्ति और संकट में धैर्य रखना, क्षमाशील बनना, परपत्नी या परदेश पर मालिक की बिना आज्ञा के या बिना अनुमति के उस पर अपना अधिकार नहीं जान लेना, शरीर, मन, आत्मा को सदा पवित्र रखना, अपनी इन्द्रियों को कुपथगामी न बनाकर उन्हें सदा अपने वश में रखना, अपनी बुद्धि को सत्पथगामी बनाकर उसे सदा सत्पथ पर चलाना, नाना प्रकार की विधाओं तथा कला कौशल रूपी विज्ञान को प्राप्त करना। मन, वचन तथा कर्म से सदा सत्य का ही व्यवहार करना, सत्य से कभी विचलित न होना, किसी प्राणी पर अनुचित क्रोध न करना, **मानव जीवन को उच्च, महान तथा पवित्र बनाने वाले कर्तव्य कर्मो का नाम ही प्राचीन ऋषियों ने धर्म रखा है।** किसी भी विशेष प्रकार की रूढ़ि या रिवाज को धर्म नहीं माना है।

हम आजकल के प्रचलित रूढ़ि प्रधान मतों को सम्प्रदाय, पंथ, मजहब के नाम से तो पुकार सकते हैं, किन्तु धर्म के नाम से नहीं। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है धर्म उन सार्वभौम तथा सर्वहितकारी नियमों का नाम है, जिन पर चलकर हम परम शांति तथा परम आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं। इन्हीं सार्वभौम सिद्धान्तों तथा नियमों का नाम ही वैदिक धर्म या मानव धर्म है। यही इह तथा परलोक में हमें सुख, शांति तथा परमानन्द प्रदान कर सकता है। मानव धर्म में क्या क्या विशेषताएँ हैं इनका हम यहाँ संक्षेप में वर्णन कर फिर कुछ विस्तार पूर्वक दिग्दर्शन करेंगे, जिससे कि सच्चे मानव धर्म के यथार्थ स्वरूप से हम अवगत हो सकें:–

1. मानव धर्म किसी अल्पज्ञ का मनोकल्पित निर्देश नहीं, प्रत्युत उस सर्वज्ञ प्रभु का सन्देश है।
2. मानव धर्म केवल विश्वास प्रधान ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ आचार प्रधान भी है।
3. मानव धर्म मनुष्य को साम्प्रदायिक या केवल अंधविश्वासी ही नही बनाता, मनुष्य बनाता है।
4. सच्चा धर्म मनुष्य को परस्पर द्वेष या बैर करना नहीं सिखाता अपितु परस्पर विश्व प्रेम का पाठ पढ़ाता है।
5. सच्चा मानव धर्म प्रत्येक वस्तु के यथार्थ स्वरूप को दर्शाता है।
6. सच्चा मानव धर्म उपास्य और उपासक में सीधा संबंध बताता है, किसी पीर, पैगम्बर या देवता को माध्यम नहीं बनाता।
7. मानव धर्म अपने जीवन को स्वार्थमय न बनाकर त्यागमय अथवा यज्ञमय बनाना सिखाता है।
8. मानव धर्म अकर्मण्यता एवं भाग्य के भरोसे के चक्कर में न फंसा कर पुरुष को पुरूषार्थता तथा कर्मण्यता का पाठ पढ़ाता है।

संक्षेप में ये आठ विशेषताएँ हैं, जो कि सार्वभौम धर्म में होनी चाहिए। यही आठ विशेषताएँ सच्चे मानव धर्म अथवा पवित्र वैदिक धर्म में पूर्णतया विद्यमान हैं। इन्हीं आठ विशेषताओं को कुछ विस्तार पूर्वक आपके सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगी।

मजहब

1) मजहब सम्प्रदाय या पंथ का अर्थ है रास्ता या परिपाटी, जिसको किसी विशेष व्यक्ति ने चलाया या निर्देश किया है। यही कारण है कि आज तक जितने भी सम्प्रदाय या मजहब चले हैं उन व्यक्तियों के विशेष नाम से ही चले है या प्रचलित हैं जिन्होंने कि उनको चलाया या निर्देश किया है जैसे कबीर पंथी, दादू पंथी, नानक पंथी, मरम्बदी इसाई, शैव, शाक्य इत्यादि। मजहबों या सम्प्रदायों के नाम ही हमारी उपर्युक्त सत्यता को स्पष्ट प्रमाणित कर रहे हैं कि ये सम्प्रदाय किन्हीं विशेष व्यक्तियों की अपनी बुद्धि या मन की कल्पना हैं, न कि ईश्वरीय आदेश। यही कारण है कि उपर्युक्त मजहबों व सम्प्रदायों में से उनके प्रवर्तकों को पृथक कर दिया जाये तो उपर्युक्त मजहब या सम्प्रदायरी के केवल नाम शेष ही रह जाएंगे विपरीत इसके धर्म न मजहब है, न सम्प्रदाय प्रत्युत धर्म ईश्वरीय आदेश है जिसको कि सृष्टि के प्रारम्भ में प्राणी जगत् के कल्याणार्थ तथा सृष्टि के नियम पूर्वक संचालनार्थ स्वयं भगवान् ने वेद के रूप में हमें प्रदान किया है। अतः धर्म किसी व्यक्ति विशेष की उपज नहीं, अपितु स्वयं सर्वज्ञ प्रभु का आदेश है। इसीलिए जहाँ मजहब या सम्प्रदाय अल्पज्ञ मनुष्यों के मस्तिष्क की कल्पना या उपज होने से अपूर्ण है, वहाँ धर्म सर्वज्ञ प्रभु का आदेश होने से पूर्ण है। उपर्युक्त धर्म के सार्वभौम नियमों या सिद्धान्तों का जिस पुस्तक में वर्णन है, उसी पवित्र पुस्तक का नाम वेद है। सम्पूर्ण ऋषि, मुनि या महात्मा जन इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि वेद ईश्वरीय वाणी है जो सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों के कल्याणार्थ चार ऋषियों के हृदय में प्रदान किया। इस सम्बन्ध में कुछ विशेष उद्धरणों के द्वारा आपके सम्मुख उपस्थित करती हूँ:–

उस स्वयंभू परमेश्वर ने अनादि तथा अविनाशी दिव्य वेद वाणी का सृष्टि के आदि में उपदेश दिया। उस पवित्र वाणी से ही दुनियाँ के सब व्यवहार चले हैं। वेद ज्ञान का सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकट होना, वेदों में किसी भी व्यक्ति विशेष के इतिहास का न होना, वेद किसी भी देश विशेष की भाषा में न होकर उसका वैदिक भाषा में होना ही इस बात का प्रबल प्रमाण है कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। मोक्षमूलक पाश्चात्य विद्वानों नें भी इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार लिया है कि वेद ही दुनियाँ के पुस्तकालय में सबसे पुरानी पुस्तक है।

वेद स्वयं इस बात की साक्षी देता है कि वह किसी मनुष्य विशेष की उपज नहीं प्रत्युत वह स्वयं ईश्वरीय संदेश है। जैसा कि ऋग्वेद में लिखा है:–

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्वाति,
यो ब्रह्मणे प्रथमो गाः आर्षेन्दता।।

जो प्रभु सम्पूर्ण जगत् के जड़, चेतन पदार्थों का एक मात्र स्वामी है, जिस परमेश्वर ने सर्व प्रथम सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मज्ञानी ऋषियों के हृदय में वेद वाणी को प्रकट किया है उस पावन वेद वाणी से ही दुनियाँ के सब व्यवहार चले हैं। अथर्ववेद में इसी विषय को दूसरे रूप में इस प्रकार प्रकट किया है:–

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही।
एकर्षिर्यस्मिनार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः
स्विदेव सः।।

अथर्व. 10/7/14

सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुये ऋषियों ने जिस प्रभु में ध्यानावस्थित होकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान प्राप्त किया, जो प्रभु सर्वज्ञ है तथा जिसके अन्दर सारा ब्रह्माण्ड मणिमाला की तरह ओत–प्रोत है, जो सब का आधार है, हे ज्ञानीजनो! उसे कहो कि वह देव कौन–सा है? यहाँ पहेली के रूप में ईश्वर का वर्णन करते हुए प्रभु को सृष्टि के प्रारम्भ में पैदा हुए ऋषियों के हृदय में वेदों का ज्ञान देने वाला कहा है।

इन्द्र आदि देव तथा योगीजन जिस प्रभु की प्रेममयी गोद में अपना वास करते हैं वह सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार वेद पति परमात्मा ही निश्चय से सृष्टि के प्रारम्भ में प्रवचनीय विचित्र वेद मंत्रों का उपदेश करता है।

इस प्रकार वेद में अन्यत्र भी बहुत स्थल हैं जिसमें वेद स्वयं अपने को ईश्वरीय ज्ञान होने का पूर्ण समर्थन करता है। अतः वास्तव में सत्य धर्म वही है जो ईश्वरीय आदेश है, जो कि सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्म ज्ञानी ऋषियों द्वारा हमें प्राप्त हुआ है।

2) मजहब या सम्प्रदाय केवल विश्वास प्रधान हैं, वो जितनी मुख्यता तथा प्राथमिकता विश्वास को देते हैं, उतनी आचार को नहीं, अपने पैगम्बरों या प्रवर्तकों पर विश्वास लाना ही उनके मत में स्वर्ग या बहिश्त प्राप्ति का एकमात्र साधन है। एक मनुष्य धर्म के सब अंगों का पूर्णतया पालन करता हुआ भी, यदि वह किसी देवता विशेष या पैगम्बर पर विश्वास नहीं लाता तो वह धर्मावलम्बी नहीं कहला सकता। विश्वास लाता है तो वह धर्म के अन्य अंगों की उपेक्षा करता हुआ भी धार्मिक कहलाने का हकदार है।

धर्म आचार प्रधान है।

जहाँ मजहब और सम्प्रदाय विश्वास को प्रधानता देते हैं वहाँ धर्म में आचार को ही प्रधानता दी गई है। वैदिक धर्म के अनुसार आचारहीन मनुष्य धर्मात्मा कहलाने का कभी भी हकदार नहीं, चाहे वह ऋषि–मुनियों या उनकी मान्यताओं पर कितना भी विश्वास क्यों न रखता हो। दूसरे शब्दों में आचारवान् पुरुष ही धर्म परायण या धर्मात्मा कहला सकता है। इसलिए वैदिक धर्म में सदाचारी और धर्मात्मा पर्यायवाची शब्द हैं। **वैदिक ऋषियों ने सद्–आचार को केवल धर्म ही नहीं, प्रत्युत परमधर्म कहकर पुकारा है।** जैसा कि महाराज मनु ने आचार को परम धर्म बताया है। **आचारः परमोधर्मः** –वैदिक ऋषियों का तो यहाँ तक कहना है कि यदि कोई केवल वेद विश्वासी ही नहीं, वेद का पूर्ण ज्ञानी भी क्यों न हो, यदि वह आचारहीन है तो चारों वेद भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते यथा महर्षि मनु लिखते हैं:–**आचाराद् विच्युतो विप्रः न वेद फलमश्नुते।**

शेष पृष्ठ 11 पर

जैसा करोगे वैसा भरोगे

● कन्हैयालाल आर्य

विधाता ने संसार में कर्म को प्रधान रखा है। जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। इस नियम के अनुसार शुभ कर्मों का फल शुभ और अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है।

यदि शुभ कर्मों का संचय मानव करेगा तो उसका प्रभाव सदा छाया रहेगा। प्रभु के दरबार मे उसका मुख उज्ज्वल होगा। इसके विपरीत यदि उसने अशुभ और दुष्ट कर्म अधिक किए होंगे तो जीवन में चाहे कितनी ही सम्पत्ति एकत्रित क्यों न कर ली हो, मान और यश प्राप्त कर लिया हो परन्तु प्रभु के दरबार में उसे लज्जित होना पड़ेगा। अतः सभी आर्षग्रन्थों में शुभ कर्मो को उत्तम कोटि की कमाई और अशुभ कर्मों को खोटी कमाई की संज्ञा दी है।

वेद कहता है कि लोक में सुख और शान्ति तथा परलोक में निःश्रेयस, श्रेष्ठतम कर्मों से ही प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं। अतः प्रभु के स्वरूप और उसकी न्याय व्यवस्था को समझ कर मनुष्य को धर्माचरण ही करना चाहिए।

वेद के इस कर्म सिद्धान्त पर मनुष्य को पूरा विश्वास हो जाये तो इसके तीन लाभ होंगे–

1. किसी भी संकट के आने पर वह घबरायेगा नहीं। उसके मन में यह निश्चय होगा कि मैं इसको भोगकर ही छुटकारा पा सकता हूँ। जब प्रत्येक अवस्था में मुझे दुःख भोगना ही है तो रोने–चीखने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। मुझे धैर्य और साहस से इसका मुकाबला करना चाहिए। भय से तब तक नहीं डरना चाहिए जब तक वह आया न हो, आ ही जाये तो निर्भीक होकर उस पर प्रहार करना चाहिए। इससे कष्टों का सामना करने का साहस उत्पन्न होगा।

2. हम इतने पर ही सन्तुष्ट नहीं रहेंगे कि कष्ट आया और शान्ति से सह लिया, अपितु हममें इतनी दृढ़ता आ जायेगी कि हम कष्ट आने पर उसका स्वागत भी सहर्ष करेंगे, क्योंकि मांगने मात्र से हमें न सुख मिलता है, और न ही दुःख चाहने पर मिलता है, जो सुखादि हमें मिलता है वह हमें अपने कर्मों के आधार पर व दूसरों के द्वारा भी मिलता है। फिर यह कहां की ईमानदारी है कि हम प्रभु से सुख–समृद्धि के लिए ही प्रार्थना करें? उचित तो यही होगा कि हम अपनी प्रार्थना में कहें – प्रभो! मुझसे अज्ञान और दुर्बलतावश जो भी पाप हुआ हो, मैं उसका दुःख रूप फल मांगता हूं, ताकि मेरा बोझ शीघ्र ही उतर जाये। मन में इस प्रकार की धारणा के बनने पर हमें कष्ट के आने पर वह शान्ति मिलेगी जो किसी के ऋण चुकाने पर होती है। अथर्ववेद के काण्ड 6 के सूक्त संख्या 63 का मन्त्र संख्या 2 इस प्रकार से पाप देवता को दूर से नमस्कार करने की बात इस प्रकार प्रकट कर रहा है –

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान्वि चृता बन्धपाशान्।
यमो मह्यं पुनरित्त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे।

1. साधक (निर्ऋति) = पाप देवता से कहता है कि हे (तिग्मतेजः) तीक्ष्ण तेज वाली (निर्ऋते) पापदेवते! (नमः अस्तु) हमारा तुझे दूर से ही नमस्कार हो। तूने इस (अयस्मयान्) लोहे के बने हुए बड़े दृढ़ (बन्धपाशान्) बन्धन रज्जुओं को (विचृता) छिन्न भिन्न कर दिया है – हमसे पृथक् कर दिया है। हे पापदेवते। तेरी बड़ी कृपा है तूने हमें बन्धन मुक्त कर दिया है।

2. इस बन्धनमुक्त साधक से प्रभु कहते हैं कि पाप–बन्धनों से मुक्त करने वाला (यमः) तुम्हारे जीवन का नियमित बनाने वाला आचार्य (त्वाम्) तुझे (पुनः इत्) फिर पाप बन्धन से मुक्त करके (मह्य ददाति) मुझे देता है (तस्मै) उस (यमाय) जीवन को नियमित करने वाले (मृत्यवे) द्वितीय नवजीवन प्राप्त कराने वाले आचार्य के लिए (नमः अस्तु) तुम्हारे नमस्कार हों – तुम उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करो। अर्थात् हम पाप–देवता को दूर से ही नमस्कार करें। हे घोर आपत्ति! मैं तेरा आदर करता हूं। हे तीक्ष्ण तेज वाली! मैंने अपनी भूलों से फौलादी बेड़ियाँ डाल ली हैं, तू अपना तीव्र प्रहार करके इनको छिन्न–भिन्न कर दे। वह यम = नियामक प्रभु ही मेरे कर्मों के आधार पर मुझे देता है। मैं उस प्रभु के संहारक रूप को भी भक्ति से नमस्कार करता हूं। इस प्रकार यह कर्म सिद्धान्त हमें निर्भय रहने का संदेश देता है।

संसार में सभी कार्य सुख के लिए किए जाते हैं। दुःख के लिए नहीं। एक मनुष्य आर्थिक प्रलोभन के कारण झूठ बोलता है। वह समझता है – थोड़ा सा झूठ बोलने से हज़ारों के वारे–न्यारे हो जायेंगे फिर मैं संसार के अनेक प्रकार के सुखों का आनन्द लूंगा। स्पष्ट है कि ये सब कुकर्म सुख की इच्छा से किये जाते हैं। अब विचारना चाहिए कि क्या पाप का फल सुख भी हो सकता है? पाप का फल तो दुःख ही होगा। जब पाप का परिणाम दुःख है तो दुःख से बचने के लिए उसका परित्याग आवश्यक है।

3. जो शुभ कर्म करने वाले हैं, वे परमेश्वर की प्रसन्नता और निकटता प्राप्त करते हैं तथा अशुभ कर्म करने वाले भगवान् के दरबार से बाहर कर दिए जाते हैं इस प्रकार वे वहां तो अपमानित होते हैं, असंख्य योनियों में भी भटकते फिरते हैं और दुःख कष्ट पाते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति सदा धन–दौलत कमाने की ही रह गयी है। चाहे उसे उचित उपाय अपनाना पड़े या अनुचित। संसारी मनुष्य ने अपने जीवन का यही उद्देश्य समझ रखा है। इसी कारण से मनुष्य अशुभ कर्मों की ओर मुड़ जाता है। शुभ कर्मों की ओर मनुष्य तभी प्रवृत्त होता है जब वह ज्ञान के माध्यम से कर्म करते हुए उपासना करे।

बुद्धिमान् व्यक्ति वही है जो आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कर उनके उपदेशों पर चलता है और शुभ कर्म करने के साथ–साथ साधना भी करता है। इस शुद्ध कमाई के कारण मनुष्य इस संसार में सदा प्रसन्नता से भरा रहता है। और जब अपनी यात्रा पूरी करके इस संसार से जाता है तो प्रभु के दरबार में उसका स्वागत होता है।

करोड़ों जन्म नीच–योनियों में व्यतीत करते–करते यह मानव का चोला हमें मिला है। यदि इस सुन्दर शरीर को पाकर भी पशुओं के समान भोग योनि बने रहे तो सिवाय हाथ मलने के हमारे हाथ में कुछ भी नहीं आयेगा। हम मानवों में और पशु, पक्षी, कीट–पतंग, जलचर, नभचर में क्या अन्तर है? वे भी पैदा होते हैं, हम भी इस संसार में पैदा होते हैं। वे भी आयु में बढ़ते हैं और हम भी बढ़ते हैं, वे भी सन्तान उत्पत्ति करते हैं, और हम भी सन्तानोत्पत्ति करते हैं, वे भी सन्तान का पालन–पोषण करते हैं, हम भी अपनी सन्तानों का पालन–पोषण और उन्हें सुख सुविधायें प्रदान करते हैं। कुछ समय के पश्चात् वे भी मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं, हम मानव भी मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। इस प्रकार तो हम और पशु पक्षी, कीट, पतंग, जलचर, नभचर एक जैसे हैं। परन्तु हम मानव हैं, मननशील हैं, प्रभु ने हमें बुद्धि दी है, उचित और अनुचित का विचार करने का अवसर दिया है, हमें वाणी दी है ताकि हम इस वाणी का सदुपयोग कर सकें। हमें हाथ दियें हैं ताकि इन हाथों से शुभ कर्म कर सकें, दुखियों, पीड़ितों की सहायता कर सकें, इन हाथों से दान दे सकें और इस मानव जीवन को सार्थक करते हुए मानव जीवन के लक्ष्य मोक्ष–प्राप्ति कर सकें परन्तु यह मोक्ष–प्राप्ति का साधन केवल मानव चोला है। यदि हमने इस मानव चोले को अपने अशुभ कर्मों में कलंकित कर दिया तो निश्चित बात है कि हमें निम्नकोटि की योनियों में जाना पड़ेगा।

एक विद्वान् ने एक बीमार व्यक्ति की चार स्थितियों का वर्णन किया है–

1. एक व्यक्ति वैद्यक की पुस्तकें पढ़ ले, किस बीमारी की क्या औषधि लेनी है, वह भी जान ले परन्तु औषधि न खाये।

2. दूसरा व्यक्ति औषधि तो मुख में रख ले परन्तु थोड़ी देर में कुल्ला करके बाहर निकाल दे।

3. औषधि तो खाये परन्तु परहेज न करे।

4. सच्ची लगन और विश्वास के साथ दवाई भी खाये और परहेज भी करे।

आप इन चारों से सम्भवतः चौथी स्थिति वाले व्यक्ति के शीघ्र स्वस्थ होने की बात करेंगे। इसी प्रकार शुभ करने वाला व्यक्ति न केवल ज्ञान प्राप्त करता है बल्कि उस ज्ञान को अपने जीवन का अंग बनाता है, उसे व्यवहार में लाता है, उसकी करनी और कथनी में अन्तर नहीं होता और ज्ञानपूर्वक कर्म करता हुआ उपासना में लगा रहता है। शुभ कर्म करता हुआ उपासना में लगा रहता है। शुभ कर्म करने में अपने जीवन को लगा देता है। उस व्यक्ति का जीवन यज्ञमय हो जाता है। क्योंकि वह जानता है–

बोया पेड़ बूबल का, तो आम कहां से खाये? यदि हमने जीवन में बुरे कर्म किये हैं अर्थात् कांटों वाला बबूल बोया है तो उस से आम के फल के उत्पन्न होने की कल्पना करना मूर्खता के सिवाय कुछ नहीं है। शुभ कर्म करेंगे तो अच्छा जीवन मिलेगा यहां भी सुख और परलोक में भी आनन्द की प्राप्ति होगी, प्रभु का साक्षात्कार संभव हो सकेगा। प्रभु हम पर उपकार करे कि हम सद्बुद्धि का प्रयोग करते हुए शुभ कर्म करें और अशुभ कर्मों का त्याग करें और सदैव इस बात का ध्यान रखें कि ईश्वर हमारी प्रत्येक कृति को देख रहा है और इस बात को भी स्मरण रखें कि जैसा करेंगे वैसा भरेंगे तभी हमारा जीवन सार्थक हो पायेगा।

सम्पर्क सूत्र–
4/44, शिवाजी नगर, गुड़गाँव, हरियाणा
चलभाष – 09911197073

यज्ञ जीवन की साधना सिखाता है

'यज्ञो वै विष्णु'–यज्ञ ही सर्वव्यापक विष्णु है और 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' प्रत्येक शुभ कार्य यज्ञ है, जो निस्पृह जीवन की साधना सिखाता है। 'इदं न मम' यह मेरा नहीं है। यह सब उस व्यापक ईश्वर की देन है। यज्ञ की आत्मा 'स्वाहा' है। उपासक कहता है–सु+आह=उत्तम बात कही। जो कुछ मेरी अंतर आत्मा में है वही कहा है, स्व+आह=स्वाहा। जो मेरे आधीन हैं वही मेरा है, किसी दूसरे का मेरे जीवन में कुछ नहीं है। यज्ञ त्यागमय जीवन के आदर्श का प्रतीक है। 'इदं न मम' इन भावनाओं से ही हमारा सनातन आध्यात्मिक समाजवाद जीवित रह सकता है। 'यज्ञ' का अर्थ है–त्याग, परोपकार। वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक प्रगति का सारा आधार इसी एक प्रवृत्ति पर निर्भर है। मनुष्य का जन्म भी इसी यज्ञ–भावना के कारण होता है। माता शिशु का निर्माण बिना किसी स्वार्थ भाव के करती है। इसी बात को गीताकार ने कहा है–प्रजापति ने यज्ञ को मनुष्य के साथ संस्कार रूप में जुड़वा भाई की तरह पैदा किया और यह व्यवस्था की कि दोनों एक दूसरे का अभिवर्धन करते हुए बढ़ते रहें।

चर्चित पुस्तक

दलित विमर्श पर एकांगी दृष्टि

● हरिकृष्ण निगम

पोस्ट–हिन्दू इण्डिया–ए डिस्कोर्स इन दलित–बहुजन, सोशियो–स्प्रिचुअल एण्ड साइन्टिफ़िक रिवोलुशन, लेखक–कांचा इलैया, प्रकाशक–सेज पब्लीकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ–340, मूल्य – रु. 295, प्रकाशन वर्ष – दिसम्बर 2009

बहुसंख्यकों के विरुद्ध घृणा का नया पचांग लिखने वालों में आज के समय में हैदराबाद–स्थित 49–वर्षीय एक दुस्साहसी लेखक कांचा इलैया का नाम सर्वोपरि है जिन्होंने दलित–विमर्श की आड़ में राजनीतिक कारणों से विदेशों में भी नाम कमाया है। वे अन्तर्राष्ट्रीय चर्च के अनेक सम्प्रदायों व मानवाधिकार संगठनों के उतने ही चहेते हैं जितने कि वामपंथियों के प्रिय पात्र। सन् 1996 में प्रकाशित उनकी प्रथम कृति 'व्हाई आई.एम. नॉट ए हिन्दू?' – –'मैं हिन्दू क्यों नही हूँ?' ने उन्हें देश भर में प्रसिद्धि दिलाई थी क्योंकि उसके विवादित और चर्चित होने के बाद उन पर आरोप भी लगा था कि वे साम्प्रदायिक सद्‌भाव भंग करना चाहते हैं। सभी दलों के हिन्दू राजनीतिक व धार्मिक नेता उनका निशाना रहे हैं। गत वर्ष 2009 में ही उनकी एक और पुस्तिका चर्चित हुई थी जिसका शीर्षक था – 'गॉड एज् ए पालिटिकल फ़िलॉसफर बुद्धाज चैलेन्ज टु ब्राहमेनिज्म'। लेखक की विकृत और असामान्य दृष्टि का सारांश यह है कि हिन्दू आस्था का पर्याय ब्राह्मणवाद है और इस उप–महाद्वीप की सारी बुराइयों की जड़ बहुसंख्यकों का धर्म है। इस प्रकार की हठधर्मिता, दुराग्रह अथवा वितृष्णा एक मनोरोगी ही प्रदर्शित कर सकता है, यह स्पष्ट है।

लेखक ने शालीनता की सीमा व संवैधानिक प्रावधानों का कुछ समय पहले इतना गम्भीर उल्लंघन किया था जब वे अमेरिकी सीनेट की एक उपसमिति के समक्ष यह गुहार लगाने पहुंचे कि भारत में दलितों के उत्पीड़न के विरूद्ध वे हस्तक्षेप करें और सवर्ण हिन्दुओं द्वारा दलितों के ऊपर होने वाले अत्याचारों पर अंकुश लगाएं। इस समस्या का अन्तर्राष्ट्रीयकरण देश की छवि व जनतांत्रिक प्रक्रिया पर उन्होंने विदेशों में थूकना उचित समझा। परिणाम साफ था उन्हें विदेशों में अनेक लाबियों द्वारा संरक्षण मिलने लगा।

प्रस्तुत समीक्षित पुस्तक में जहाँ उन्होंने दलित–बहुजन समुदायों की विपन्नता व उपेक्षा पर चिन्ता व्यक्त की है वे यह याद दिलाना नहीं भूलते है कि सांस्कृतिक रूप में इस वर्ग और सर्वर्णों विशेषकर ब्राह्मणों, व्यावसायिक समूहों और भूमि का स्वामित्व पा गए शूद्र समुदायों में भी कोई सामान्य सूत्र नहीं है जो उन्हें बांध सकें। ऊँची जाति के हिन्दुओं की धारणाओं, मान्यताओं और सांस्कृतिक व्यवहारों में लेखक के अनुसार दलितों के साथ कोई सामान्य बंधन नहीं है। घृणा पर आधारित लेखक के विचारों में मात्र हिन्दू आस्था के प्रति घोर वितृष्णा झलकती है और वह अपनी जड़ों को नकारने में मतान्तरण में लगे चर्च समूहों के हाथ में एक अप्रत्यक्ष मोहरा बनता दीखता है।

इस ग्रंथ में लेखक ने हिन्दुत्व से परे भारत की उभरती स्थिति की जांच करने में भारी भरकम शब्दावली का प्रयोग किया। लेखक एक कल्पना जगत में विचरण करते हुए कहता है कि आज हिन्दुत्व अपनी अन्तिम सांसें ले रहा है। जनसंख्या का मात्र 10 या 12 प्रतिशत जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या बनिया वर्ग हैं वही अब अपनी हिन्दू पहचान से जुड़ेंगे। सामाजिक स्तरों के इस क्रम में शूद्रों की स्थिति हिन्दू धर्म में ढुलमुल रहेगी। लेखक हवाई किले बनाकर लिखता है कि जब उन्हें ज्ञात हो जाएगा कि हिन्दू धर्म अपनी अन्तिम साँसे ले रहा है तब वे इसे एक डूबते जहाज की तरह छोड़ देंगे। विक्षिप्त और एक गम्भीर मनोरोगी जैसे एक लेखक की बौखलाहट को हमारे अंग्रेजी मीडिया का एक बड़ा वर्ग उछालेगा, इस पर विस्मय होता है। न आज और न पहले कभी ऐसा कोई संकेत रहा है कि दलित और दूसरा कोई भी कथित वर्ग हिन्दू समाज से अलग पहचान बना सकता है। बृहद हिन्दू समाज के ढांचे में अनेक स्तरीय भेदभाव रहे होंगे पर ऐसी हठधर्मिता न तो स्वयं बाबा साहब अम्बेडकर के साहित्य में या सत्तर के दशक में भारत के जातीय विद्वेष के व भेदभाव के प्रख्यात विचारक आनन्द चिन्तामणि परांजपे के ग्रंथों में ही कभी उभरा था जो अमेरिका में प्रकाशित हुए थे।

आज पहला प्रश्न उठता है कि क्या जो हिन्दुत्व को राष्ट्र की आत्मा मानते हैं वे सब जाति प्रथा के समर्थक हैं। सामाजिक असमानता व अन्याय के अनेक आयाम हैं। यह समस्या राजनीति के कारण अधिक उलझाई गई है। क्षुद्र राजनीतिक लाभ के लिए केवल एक राष्ट्रद्रोही प्रचारित करेगा कि दलित हिन्दू नहीं हैं। यह सर्वविदित है कि इस देश का एक भी सचेत व शिक्षित हिन्दू ऐसा न होगा जो अस्पृश्यता में विश्वास करता है। अरसे में रूपान्तरित होता हुआ लचीला, खुला उदारवादी हिन्दू समाज मानने लगा है कि एक समय सवर्ण समाज के मन की विकृति का नाम ही अस्पृश्यता था। भेदयुक्त मानसिकता वाली जाति प्रथा का जीर्ण होना अनिवार्य है पर जिसे हमारे छिछले राजनीतिज्ञ अपनी वोटों की राजनीति के कारण अनन्तकाल तक बनाए रखना चाहते हैं। वे सब जो जाति के दंश को कोसते हुए हर मौके पर बहुसंख्यकों की भर्त्सना करने में नहीं चूकते थे वे सब जनगणना के प्रारम्भ होते ही जाति के आधार पर अधिकाधिक सूचना–संग्रहण के लिए व्यथित दिखलाई देते रहे हैं। जात–पांत तोड़ने की कसमें खाने वाले संगठन अथवा उनसे जुड़े विचारक एवं पत्रकार भी चाहे अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अन्य पिछड़ी जातियों या किसी भी सम्भावित प्रभावशाली जाति के वोट बैंक का प्रश्न हो दर्ज कराने के लिए प्रचार में लगा हुआ है। अब वे नहीं कहते हैं कि जातिगत, नस्लवादी, दलित–बहुजन अलगाव संघर्षों को जन्म दे सकता है। अब तो कांचा इलैया जैसे सामाजिक ढांचे को आमूल–चूल परिवर्तित करने वाले लेखक भी कह रहे है कि जातिगत जनगणना से क्यों डरें? सवर्णों को भय होगा क्योंकि अनेक नई पहचानों के बीच हिन्दू धर्म का विघटन और पतन निश्चित है। पहले इसी तर्ज के राग अलापने वाले विचारक और राजनीतिज्ञ सदैव कहते थे कि जातीय आधार वाली जनगणना ब्रिटिश उपनिवेशवाद की देन है। साफ है कि इस पीढ़ी के कथित बुद्धिजीवियों की असफलता मुंह बाएं सामने खड़ी है। भारत के जनतंत्र का यह ब्रैण्ड सामाजिक अन्तर्विरोधों, वितृष्णा, असमानता एवं दबावों के आरक्षण पर पूरी तरह आधारित है जिसे हमारे राजनेता नित नए रूप में हवा देते रहते हैं।

यदि कांचा इलैया के तर्कों पर विश्वास करें तो हिन्दुत्व का अर्थ ब्राह्मणवाद है। शब्द जाल में भ्रमित करने वाली इस पुस्तक को पढ़ने के बाद कूड़ेदान में डाला जा सकता है। अपशब्दों एवं अशालीन शब्दावली के बावजूद हिन्दुत्व एक विश्वव्यापी धर्म के रूप में आगे बढ़ेगा, ऐसा सभी भली भांति जानते हैं। पर हिन्दू धर्म इस लेखक के विचार में आध्यात्मिक फ़ासिज्म का एक रूप है। इस दृष्टिकोण का असली मन्तव्य किसी लॉबी द्वारा वैमनस्य के सहारे अपना एजेन्डा ही पूरा करना दीखता है।

क्या लेखक के उन निष्कर्षों पर किसी को विश्वास हो सकता है कि आगे आने वाले समय में हिन्दू आध्यात्मिक फासीवाद और आध्यात्मिक प्रजातंत्र में संघर्ष अवश्यम्भावी है। ब्राह्मणों की विज्ञान–विरोधी और उत्पादन से जुड़े वर्गों के प्रति भेदभाव देश में सामाजिक क्षेत्र में एक गृह युद्ध को अनिवार्य बना देगा। हिन्दू संस्कृति के हर पक्ष को जाति–विद्वेष व पुराने भेदभावों के लिए उत्तरदायी मानकर बौखलाहट में लेखक व्यवसायी वर्ग की समृद्धि को भी पुराने हिन्दू विचारों की तरह कोसता है और ब्राह्मणों के लिए अपशब्दों की नई शब्दावली गढ़ता है। भ्रमित, विकृत और एकपक्षीय धारणा के प्रचार में कांचा इलैया को मीडिया का एक वर्ग इस तरह संरक्षण दे रहा है जहाँ सवर्णों ने शक्ति के स्रोतों पर जबरदस्ती अपना आधिपत्य जमाया हो। दुर्भाग्य से अधिकांश बहुसंख्यक इस तरह घृणित दुष्प्रचार की प्रकृति से परिचित नहीं हैं। हमारी मानसिकता में वामपंथियों ने वर्गसंघर्ष के शब्दाडम्बर द्वारा निहित अस्पष्ट अवधारणाओं द्वारा हमारे समाज को विभाजित करने की भरसक कोशिश की है। दलित विमर्श के बहाने कांचा इलैया जैसे लेखक इतर धर्मों व मार्क्सवादियों की अपराधपूर्ण दुरभिसन्धि द्वारा विश्वासघाती खेल को आगे बढ़ाना चाहते हैं। शत्रु की रणनीति को समझने के लिए हर राष्ट्र प्रेमी को यही नहीं इस तरह के सभी ग्रंथों का अध्ययन करना अपेक्षित है। हम अपनी उदारता में यह भूल जाते हैं कि हमारी आस्था की नाकेबन्दी की प्रक्रिया द्रुतगति से जारी है और संगठित हिन्दू के रूप में हमारी चिन्तन की क्षमता बहुत कम होती जा रही है।

[एक समय उस्मानिया विश्वविद्यालय से जुड़े, कांचा इलैया सम्प्रति हैदराबाद के मौलाना आजाद नेशनल उर्दू विश्वविद्यालय के सेन्टर फार स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूजन एण्ड इन्क्लूसिव पालिसी के निदेशक हैं]

ए – 1002, पंचशील हाईट्स,
महावीर नगर,
कान्दिवली (प), मुम्बई–6
मो. 9820215464

मानव उत्पत्ति काल में मानव किस अवस्था में उत्पन्न हुआ

● हरिश्चन्द्र वर्मा

मैंने आर्य जगत् के 11 जुलाई 2015 अंक को देखा, उसमें नहीं लिखा है कि एक विशेष प्रकार के प्राणी से मानव का सर्वप्रथम पशु आकार में जन्म हुआ।

श्री भावेश मेरजा जी, 8–17 टाउनशिप, पो. नर्मदा नगर, का विचार आर्य जगत् के 17 अक्टूबर 2015 के अंक में पढ़ा। आपने ऋषि दयानन्द का मन्तव्य लिखा है, कि (1) ईश्वर ने सृष्टि की आदि में अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे। (2) आदि सृष्टि में मनुष्य की युवा अवस्था में सृष्टि हुई थी।

ऋषि दयानन्द ने इस मानव उत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत संक्षेप में लिखा है। एकाएक सृष्टिक्रम के विरुद्ध मानव की उत्पत्ति युवा अवस्था में कभी नही हो सकती। वेद के अनुसार जब ईश्वर जब ईश्वर के 'तपः' सामर्थ से 'सत्' प्रकृति में 'ऋत' परिवर्तन, शक्ति की क्रिया उत्पन्न हुई तब प्रकृति का पहला रूपान्तर महत् उत्पन्न हुआ उसके पश्चात अहंकार, पांच सूक्ष्म भूत, फिर उनसे पांच महाभूत आदि उत्पन्न हो गये।

देखिये दर्जी कपड़े का काट–छाँट तभी तक करता है, तब तक कमीज तैयार नहीं हो जाता, जब तैयार हो जाता है,तब कोई काट–छांट रूपी परिवर्तन नहीं होता जैसे–पंचतत्व। हम लोग जितनी दृश्य रूप में बनी सृष्टियों को देख रहे हैं, सब प्रकृति के परमाणुओं के समूहों से ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार बुद्धिपूर्वक पंचतत्व से लेकर सूर्य चन्द्रादि की रचना सब परिवर्तन द्वारा ही हुई है।

आप इतना जान लें कि मिट्टी रूपी उपादान से, चाक रूपी परिवर्तन के नियम से सर्वज्ञ परमेश्वर ने विभिन्न प्रकार की रहस्यमयी सृष्टियों की रचना की है।

सूर्य के ताप से सागर का जल वाष्प बनता है, वायु के योग से वाष्प ऊपर जाकर बादल बन जाता है, फिर उन्हीं काले बादलों में जल फिल्टर होकर बरसने लगता है, बरसात में दो विरोधी बादलों के टकराव से बिजली और ध्वनि की उत्पत्ति हो जाती है, इस प्रकार इन सबकी उत्पत्ति रूपान्तर द्वारा ही होती है। कोयला, तेल, गैस आदि पदार्थों के वास्तविक रूप सब भूगर्भ में अनेक प्रकार के रासायनिक और ताप क्रम के परिवर्तनों द्वारा ही बने हैं। 'स्वर्णालंकार' बनने के पहले सोना या तो छड़ के रूप में या तो गोल रहता है, वह एकाएक गले का हार नहीं बन सकता, जब तक उसे कारीगर न बनावे।

"विश्वस्य, मिषत:" (ऋग्वेद) सृष्टि की आदि में पहले हरकत करने वाले प्राणी उत्पन्न हुए। हमारे विचार से ये विभिन्न प्रकार के प्राणी पहले सूक्ष्म भ्रूण में थे, उसके पश्चात जो जिस जाति का था–जलचर, स्थलचर, वायुचर सब सूक्ष्म से परिवर्तन होकर अपने–अपने रूप को धारण कर लिये। इन सबके पूर्वज अमैथुनी तरीके से उत्पन्न हुए।

आप तो जानते ही है कि मेढक की, भृंगी (बिलनी) की, तितलियों की आदि में उत्पत्ति कैसे हुई थी, जो आज भी उसी तरह हो रही है। विकासवाद के अनुसार किसी अमीबा से विकसित और रूपान्तर हो होकर सारे प्राणियों की उत्पत्ति नहीं हुई थी, और न बन्दर आदि प्राणियों से मानव उत्पत्ति हुई थी। यदि बन्दरों, वनमानुषों, गोरिल्ला, चिपांजी आदि से मानव की उत्पत्ति हुई होती, तो आज भी होती। किन्तु प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मानव की उत्पत्ति एक अलग प्रकार से हुई है।

जब जीवन उपयोगी पंच तत्वों की उत्पत्ति हो गई, तब वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई, उसके पश्चात क्रमशः सारे प्राणियों की और अंत में मानव और मानवी की उत्पत्ति हुई। अब प्रश्न है कि इनकी उत्पत्ति बिना माता–पिता के अमैथुनी तरीके से कैसे हुई? सृष्टि क्रम के विरुद्ध, जादू की तरह मानव तो युवा अवस्था में उत्पन्न नहीं हुआ और शिशु अवस्था में भी कैसे पैदा होता क्योंकि शीत, गर्मी, बरसात को वह सहन कैसे करता, फिर उसे भोजन कैसे मिलता?

आज भी जब शिशु जन्म लेता है तब उसके बाद पेटकुनियां सरकता है, फिर कुछ महीने बाद हाथ–पैरों से चौपाया चलता है, उसके पश्चात् खड़े होकर चलने लगता है।(यदि मानव शिशु को जंगल में छोड़ दिया जाय तो क्या वह बच सकता है?) इसलिये मानव बनने वाले भी एक विशेष प्रकार के प्राणी पशु आकार में एक ही बार उत्पन्न हुए इसलिये लिखा कि (तितलियों की उत्पत्ति भी सूँडी कीट से हुई थी और होती है) मानव उत्पत्ति के सम्बन्ध में मेरी ऐसी ही धारणा है, चाहे कोई माने या न माने।

2–सृष्टि के आदि में विभिन्न योनियों में प्राणियों की उत्पत्ति ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार सचालित होती है जिसे अमैथुनी सृष्टि कहते हैं। अर्थात नर और नारी के संयोग के बिना ही जीव शरीर धारण करते हैं। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार तिब्बत के आसपास मानव की उत्पत्ति के लिये जहाँ फलादि वनस्पतियाँ थीं वहीं धरती माता की कुक्षी के गुहा में जहाँ स्वाभाविक सूर्य का प्रकाश, पांच सूक्ष्म भूतों के अणु और अनेक प्रकार के रासायनिक तत्वों से हजारों वर्षों में जब 'रज–वीर्य' जैसे मूल तत्वों का निर्माण हो गया तब किसी विशेष आवरण में इकठ्ठा होने पर आत्माओं के संयोग से उनके अंदर भ्रूण में शरीर रचना आरम्भ होने लगा। महीनों पश्चात देह परिपक्व हो जाने पर, आवरण अर्थात झिल्लियों के फट जाने पर उनमें से बने–बनाये एक विशेष प्रकार के पशु जो देखने में मानव–मानवी जैसे थे "यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे"।(ऋग्वेद, खिल, सू.34,मं.2) अर्थात पृथिवी ने प्राणियों के गर्भ को उत्तान अर्थात लेटे हुए अवस्था में धारण किया। उसके पश्चात लेटे हुए अवस्था में पैदा हो गये, और पेटकुनियां सरकने लगे, फिर हाथ–पैरों से चौपाया चलने लगे और आस पास के फलों को खाकर जैसे जैसे पुष्ट होने लगे वैसे–वैसे उनमें परिवर्तन होने लगा। अंत में हजारों की संख्या में वे नारी और पुरुष रूप में परिणत हो गये।

आदि सृष्टि में सब नर–नारी बाल्य अवस्था में थे। उनकी अशिष्ठा प्रतिषिद्ध चेष्टा थी–अर्थात उन्हें शासन व प्रतिषेध नहीं लगे थे, उनके में स्वाभाविक ज्ञान पांच वर्ष तक चलता रहा, पशु पक्षी हो या मनुष्य प्रारम्भ में सभी को स्वाभाविक ज्ञान प्राप्त हुआ था। परमेश्वर ने मानवों की अपेक्षा पशु–पक्षियों को पर्याप्त स्वाभाविक ज्ञान प्रदान किया है–उनकी संतान शीघ्र ही आत्म निर्भर हो जाती है। गाय, भैंस का बच्चा पानी में घुसते ही तैरने लगता है, परन्तु मनुष्य बालक बिना सिखाये तैर नही सकता। बाबूई पंक्षी ऐसी अपनी घोंसला ताल वृक्ष पर बुनती है कि उसकी कारीगरी देखने योग्य होती है, मकड़ी के जाले, और मधुमक्खी के छत्ते में भी कारीगरी है, ऐसे अनके प्राणी हैं जिन्होंने ये कलायें किसी से सीखी नहीं है, न किसी अन्य प्राणियों को सिखाई है। इनको ये लाखों–करोड़ों वर्ष पूर्व भी इसी प्रकार बनाती थीं, आज भी बनाती हैं और आगे भी बनाती रहेंगी। किन्तु मनुष्य अभियान्त्रिकी शिक्षा प्राप्त किये बिना साधारण निर्माण भी नहीं कर सकता। इससे स्पष्ट है कि मानव पशु–पक्षियों के समान केवल स्वाभाविक ज्ञान पर आधारित न रहकर नैमित्तिक ज्ञान के सहारे उन्नति करने में समर्थ होता है।

मानव उत्पत्ति काल के पश्चात उन हजारों में से कुछ लोग जंगल के गुफाओं में रहने लगे और कुछ उच्च विचार वाले तिब्बत के आसपास मानसरोवर के स्थानों में वास करने लगे। जब परमात्मा ने प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मानव को उत्पन्न कर दिया, तो उन्हें स्वाभाविक ज्ञान के अलावा, नैमित्तिक ज्ञान के लिये सर्वश्रेष्ठ वेद–विद्या के अधिकारी वे ही लोग हुए जो पुरुषों में उत्तम जिनकी बुद्धि तीव्र, पवित्रात्मा थे, उन्हीं को ध्यानावस्था में वेद एवं वैदिक ऋषि भाषा 'सविता देव, गायत्री छन्दों से प्राप्त होने लगा। अतः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को ऐश्वरीय शक्ति ने ऋषियो के हृदय में प्रकट किया। ऋग्वेद अग्निमीडे प्रथम मंत्र अग्नि ऋषि को; यजुर्वेद इषेत्वोर्जेत्वा वायवः प्रथम मंत्र, वायु ऋषि को; सामवेद, अग्नेनिसत्सि वर्हिषि प्रथम मंत्र सूर्य (आदित्य) ऋषि को, वह्नि शब्देन सूर्यो ऋ.3,31,1।

ऋ.भा.भू.ग्रन्थ प्रमाण्या प्रमाण्य विषय, अथर्व अथर्वोगिरसः अथर्व. 10,7,2 अंगिरा ऋषि को जिस समय अग्नि आदि ऋषियों को वेदों के मंत्र प्राप्त हो रहे थे, उसी समय ऋग्वेद का यह मंत्र आया–'न हि वो अत्यर्भको देवासो न कुमार कः। विश्वेसतो महान्त इत। (ऋग्वेद, 8,30,1)' हे समस्त प्राणियों! तुम न शिशु हो न कुमार किन्तु महान (युवा) हो।'

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः
यदेषां श्रेष्ठं यदरि प्रमासीत् प्रेणां निहितं गुहाविः।

(ऋ. 10,71,1)

इस मंत्र से स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान प्राप्त होने की प्रणाली यह है कि ज्ञान वाणी के साथ ऋषियों के (ऋषियों से अभिप्राय उन्हीं देव्य ऋषियों से है, जिनका पहले वर्णन हो चुका है और जिनसे शिक्षा पाकर श्रुत ऋषि बना करते हैं) हृदयों में प्रकट होता है और वे ज्ञान के ग्राहक ऋषि उसे संसार में प्रचलित किया करते हैं और वे ऋषि ... वस्तुओं के नामादि उच्चारण करते हैं।

इस प्रकार वेद विद्या से आदि ऋषि ज्ञा... सभ्यता और योग–यज्ञ का उपदेश देने ल... और ब्रह्मादि ऋषियों को भी वेदों को कण्ठस्थ करा दिया और तभी से ऋषियों और विशुद्ध आ... द्वारा वैदिक ज्ञान एवं भाषा का प्रचार होने लगा और नैमित्तिक ज्ञान की प्राप्ति से मैथुनी सृष्टि... माता–पिता, भाई–बहन आदि का सम्बन्ध ... समझने लगे।

इसके अलावा जो जो ऋषियों और विशु... आर्यों के सम्पर्क में आते रहे वे–वे सभ्य ... ज्ञानी होते रहे और जो जो नहीं आये वे जंगली, शिकारी और असभ्य बने रहे।

आदि सृष्टि में सब एक मनुष्य जाति ... पश्चात 'विजानी ह्यार्यान्येव च दस्यवः ... ऋग्वेद (1,51,8) का वचन है, श्रेष्ठों का ... आर्य और दस्यु दो नाम हुए, जिन्होंने आर्यों ... रीति–रिवाज को नहीं माना उन्हें डाकू और ... कहा गया।

तात्पर्य यह कि जो–जो आर्यों के वै... ज्ञान, भाषा, आचार–विचार, योग–यज्ञादि धर्म को नहीं मानें उन–उन अनार्यों की टोलि... को किसी नाम से बहिष्कार कर दिये और ... सबकी टोली उन्हीं नामों को साथ लेकर विभि... द्वीप–द्वीपान्तरों में जाकर बसने लगी और ... देशों के वही नाम रखे जिन नामों से उन्हें ... किया गया था।

उसके पश्चात कुछ आस–पास जंगली असुरों और विशुद्ध आर्यों से जब ... लड़ाई–बखेड़ा होता रहा और जब बहुत ... होने लगा तब ऋषि एवं आर्य लोग सर्वोत्तम ... भूमिखण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी ... इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ। गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र, विन्ध्याचल आदि नदियों ... नामकरण ऋषियों ने ही किया था। अतः ... आर्यों ने ग्रामों, खेतों, कूपों, मार्गों और पशुओं ... विकास किया और इस आर्यावर्त देश को ... फल, मूल, कन्दादि से उपजाऊ बनाया।

इसके पूर्व इस देश का कोई भी नाम नहीं और न आर्यों के पूर्व इस देश में कोई बसता ... क्योंकि आर्यलोग सृष्टि की आदि में कुछ का... पश्चात तिब्बत प्रान्त से सीधे इसी देश में आ... बसे थे। और जो आर्यों द्वारा कोल, भील, सं... आदि की टोली को बहिष्कार किया गया था, सब इसी आर्यावर्त देश के अरण्यों में रहने ... थे। श्री रामचन्द्र के समय में भी भील जाति ... लोग थे।

मु.पो. मुरा...
जिला–वीरभूम(प. बंगाल)–7312...
मो. 081580780...

डी.ए.वी. सरीखा बोलो कौन बलिदानी है

रक्त दान प्राण दान मूढ़ को विवेक दान
डी.ए.वी. का अर्थ एक दृष्टि की समानता।
रोग का निदान आन वान और शान
लक्ष्य है महान् जान जीवन महानता।
बंजर में बीज एक चीज है लजीज साथ
सावन व तीज एक ध्यान एक तानता।
विश्व में पताका ओ३म् ध्वज की फहरती है
डी.ए.वी. का नाम काम कौन नहीं जानता।
सैनिक सा नियम समुद्र की विशालता है
डी.ए.वी. है धूप एक साथ–साथ छाँव है।
धरती सा धीरज है व्योम की विराटता है
डी.ए.वी. है शहर तो साथ–साथ गाँव है।
शब्द की समर्थता है अर्थ की विपुलता है
डी.ए.वी. है लहर तो साथ–साथ नाव है।
कोई आँधी कोई शक्ति इसको हिलायेगी क्या
डी.ए.वी. तो मित्र एक अंगद का पाँव है।
पूरब व पश्चिम का संगम अनोखा है ये
भूत को भविष्य से मिलाता वर्तमान है।
ज्ञान का प्रकाश चारों दिशाओं में फैकता है
अंधकार नाश हेतु उगा दिनमान है।
साहस है क्षमता है दक्षता है यौवन है
सत्य है समर्पण है पंख है उड़ान है।
डी.ए.वी. का वीर वेश ऐसा मुझे लगता है
अर्जुन के पास जैसे तीर हैं कमान है।
आदिवासी क्षेत्रों में भी लिए हाथ ज्ञान दीप
अंधकार को चुनौती देता हुआ वीर है।

अधरों पै शुष्कता है मन में मरुस्थल है
जिनके सदा से उन्हें देता शुद्ध नीर है।
नित्य नई कल्पना है आँगन की अल्पना है
अम्बर में उड़ता सुनहला सा कीर है।
दूसरों के हितों हेतु जो हुआ समर्पित है
डी.ए.वी. कहूँगा मैं तो ऐसा ही फकीर है।
डी.ए.वी. का धर्म मर्म कर्म सिर्फ है प्रकाश
हंसराज के अनोखे त्याग की निशानी है।
देशभक्त शुद्ध रक्त पास है न ताज तख्त
छायादार है दरख्त सेवा की ही ठानी है।
शरदः शतम् का किया क्या लक्ष्य पूरा खूब
चेहरे पै झुर्री नहीं चढ़ती जवानी है।
गोरों की गनों पै भारतीय वक्ष तान दिया
डी.ए.वी. सरीखा बोलो कौन बलिदानी है।
जहाँ भी अंधेरा मतिमंदता दिखाई देती
ऋषि के सिपाहियों वहीं पै दीप से जलो।
छले जाना ठीक नहीं और छलना न ठीक
शुद्ध मन से बिताओ जिन्दगी नहीं छलो।
जाने कुछ लोग क्यों बिदकते हैं नाम से ही
ज्ञान की मशाल लिए हाथ में चले चलो।
डी.ए.वी. में ऐंग्लो प्रमुख नहीं रही कभी
दयानन्द वैदिक के बीच बँधी ऐंग्लो।

डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी
ए–1/13–14, सैक्टर–11
रोहिणी, दिल्ली–110 0 085
09810835335
01127572897

पत्र/कविता

महात्मा हंसराज ने शिक्षा में राष्ट्रीयता को प्रविष्ट किया

अंग्रेज शासकों ने भारत को अपने अधिकार में लेने के साथ–साथ अपने शिक्षा परामर्शक मैकाले के इस सुझाव को मान लिया था कि इस शिक्षा का प्रयोजन साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने वाले क्लर्क पैदा करना होगा। राममोहन राय ने मैकाले के सुर में सुर मिलाया, संस्कृत शिक्षा का विरोध किया, अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले स्वदेशी चिन्तक थे जिन्होंने शिक्षा में न केवल राष्ट्रीयता लाने का समर्थन किया बल्कि आगे के शिक्षा शास्त्रियों के सामने राष्ट्रीय भावों से युक्त शिक्षा देने का संकल्प रखा। दयानन्द की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए 1886 में जिस दयानन्द वैदिक कॉलेज लाहौर की स्थापना की गई उसके प्रथम प्राचार्य लाला हंसराज ने 'वैदिक' और 'ऐंग्लो' का समन्वय कर उस राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति को तरजीह दी जो पूर्व और परिचम, शास्त्र और विज्ञान का समन्वय करने वाली थी।

महात्मा हंसराज की शिक्षा नीति का परिणाम था कि प्रत्येक विद्यालय में धर्म शिक्षा अनिवार्य हुई और स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृभाव का संदेश जनता तक पहुंचा। अनेक योग्य प्राध्यापक डी.ए.वी. संस्थाओं से जुड़े। इनमें आर्य मुनि, पं राजाराम तथा दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान प्रो. दीवाननंद थे जो आगे चल कर कानपुर के डी.ए.वी. के प्राणतुल्य थे। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इसी डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक रहे पी. पी. शहानी ने 1928 में जोधपुर के जसवन्त कॉलेज का प्राचार्य पद ग्रहण किया। सामन्ती वातावरण में यहां राष्ट्रीय भावों के लिए कोई अवकाश नहीं था। परन्तु महात्मा हंसराज की राष्ट्रीय भावना से प्रभावित शहानी जी ने 2 अक्टूबर को प्रतिवर्ष गांधी जयन्ती मनाई, शासकों की भावना के प्रतिकूल। लोगों ने देखा कि सोल्जर है पहनकर कॉलेज आने वाले शहानी जी आज गांधी टोपी पहने हैं और छात्र व अध्यापक जमींन पर बैठे रामधुन कर रहे हैं। वस्तुतः यह गांधी जयन्ती भारत का राष्ट्रीय पर्व बन गया था। यह महात्मा हंसराज की शिक्षा नीति का ही चमत्कार था जिसे देशवासियों ने इस रूप में देखा। 1945 में जब पं. नेहरू अहमदनगर जेल से छूटे तो देश की स्थिति का जायजा लेने के लिए देश भ्रमण किया। इस दौरान जब पं. जी जोधपुर आये तो उसी महाराजा ने अपने राजमहल (उमेद भवन पैलेस) में पं. नेहरू का स्वागत किया। सच तो यह है कि स्वामी दयानन्द ने ही घोषणा की थी कि सुराज्य की अपेक्षा सर्वप्रथम स्वराज्य सदा उत्तम व वरणीय होता है और इस राष्ट्रीय भावना को म. हंसराज ने डी.ए.वी. शिक्षा संस्थाओं में प्रसारित किया। तभी शहानी जैसे प्रिंसिपल को साहस हुआ कि गुलामी के दिनों में भी गांधी जयन्ती के द्वारा त्याग एवं सादगी का संदेश दिया जाये। सच्चे अर्थों में महात्माजी ने शिक्षा में राष्ट्रीयता का प्रसार किया। पी. पी. शहानी राजस्थान के शिक्षाविदों में अन्यतम थे।

डॉ. भवानीलाल भारतीय
3/5 शंकर कालोनी
श्रीगंगानगर (राजस्थान)–335001

****

सरमा पणि संवाद–एक विवेचन

● डॉ. रघुवीर वेदालंकार

27 मार्च 2016 के आर्य जगत में पंजाब वि. वि. के शोध छात्र श्री उदयन का एक लेख उपर्युक्त शीर्षक से ही छपा है। एक शोधार्थी के रूप में उदयन जी का प्रयास तो अच्छा है, किन्तु उन्होंने इसे मेघ (पणि) तथा विद्युत् (सरमा) का संवाद सिद्ध करने में श्रम किया है। वेदों में अन्यत्र भी इस प्रकार के अनेक आख्यान तथा संवाद सूक्त हैं। अध्येता वहां प्रायः एक–दो शब्द का अर्थ निघण्टु तथा निरुक्त के आधार पर कर देते हैं, किंतु पूरे सूक्त की संगति उस पक्ष में नहीं लगाते जिस कारण सूक्तार्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। यथा–पुरुरवा–उर्वशी संवाद में निरुक्त के अनुसार पुरुरवा का अर्थ मेघ तथा उर्वशी का अर्थ विद्युत् तो कर देते हैं, किन्तु पूरे सूक्त की संगति मेघ तथा विद्युत् के पक्ष में असंभव होने से शायद नहीं दिखलाते। ऐसा ही प्रस्तुत सूक्त ऋ. 10/108 में भी है। यहाँ भी पूरे सूक्त के संवाद की संगति सरमा को विद्युत् तथा पणि को मेघ मान कर नहीं लगती। प्रश्न है कि सूक्त के ग्यारह मंत्र क्या केवल इसीलिए कहे गये हैं कि मेघ ने सूर्य किरणों को रोक लिया तथा इंद्र : सूर्य ने वज्र प्रहार करके गोवों: सूर्य किरणों को मुक्त कराया। यह सारा कथन एक मंत्र में भी आ सकता था, ग्यारह मंत्रों के संवाद की क्या आवश्यकता थी? क्या विचित्रता या व्यञ्जना है इस संवाद में, ऐसा किसी ने भी स्पष्ट नहीं किया है। प्रायः सभी संवाद सूक्तों तथा आख्यानों के विषय में ऐसा ही है। प. शिवशंकर शर्मा काकतीर्थ ने वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में इस प्रकार के सूक्तों की संगति का उत्तम वैदुष्य पूर्ण प्रयास किया है, किन्तु वह अन्तिम नहीं है। सरमा–पणि संवाद वहां भी नहीं है। महर्षि दयानन्द अवश्य ही ऐसे स्थानों पर वाचक लुप्तोपमा आदि मान कर अन्यार्थ का ग्रहण करते हैं किन्तु उनका भाष्य सभी आख्यानों तथा संवाद सूक्तों पर नहीं है। अब सरमा–पाणि संवाद पर विचार किया जाता है।

उदयन जी ने **'पणते व्यवहरति'** यह लिख कर भी द्रविड प्राणायाम से पणि को मेघ का वाचक मान लिया। इस प्रकार तो किसी को भी पणि कहा जा सकता है। मेघ के पक्ष में व्यवहार की बात फिट भी नहीं बैठती। वस्तुतः यहां पणि पद जमाखोर बनियों का वाचक है। यास्क स्पष्ट रूप में कह रहे हैं– **पणिः वणिग् भवति**। ऐसा जमाखोर व्यापारी वर्ग इन्द्रराजा को समुचित कर प्रदान नहीं करता है। यास्क कहते हैं– **सरमा सरणात्**। अर्थात् विचरण करने के कारण इसका सरमा नाम है। यह राजा की ऐसी गुप्तचर संस्था है जो इस प्रकार के जमाखोरों तथा टैक्स चोरों का पता लगाती है। सरमा **'टुओस्वी गतिवृद्धयोः'** धातु से बना है। इससे भी स्पष्ट है कि सरमा राष्ट्र में सर्वत्र विचरण करके ऐसे पणियों का पता लगाकर राजा को उनकी सूचना देती है। मंत्रों में जो संवाद है उसका भाव यह है कि पणियों ने वह धन अति गुप्त स्थानों में, जिन्हें मंत्र में पर्वत कहा गया है छिपा रखा है। पर्वत में छिपी वस्तु को ढूंढना अति कठिन है। वर्त्तमान में देख ही रहे हैं कि भारतीयों ने भी ऐसा कालाधन स्विट्जरलैण्ड तथा अन्यत्र विदेशों में जमा कर रखा है जिसे वापस लाना पहाड़ खोदना ही है।

सूक्त में यह भी कहा ग्या है कि पणि लोग सरमा को बहन बना कर उसे लालच देते हैं कि वह इस धन का पता राजा को न दे। सरमा इससे इन्कार कर देती है। अन्त में पणि लोग सरमा के बच्चों के लिए भोजन देते हैं। इसे मंत्र में **'तनयाय धासिम'** कहा गया है। वर्तमान में भी रिश्वत देने वाले यही कहते हैं कि यह मिष्ठान आदि आपके बच्चों के लिए है। रिश्वत लेते ही व्यक्ति अपना कर्त्तव्य छोड़ देता है। सरमा पणियों को राजा की शक्ति का भय भी देती है, किन्तु वे इससे डरते नहीं। वर्तमान में देख ही रहे हैं कि किस प्रकार पुलिस तथा अन्य राज कर्मचारियों पर दुष्टों द्वारा न केवल आक्रमण ही किया जाता है, अपितु उन्हें यमलोक भी भेज दिया जाता हैं। सांसद माल्या तो न्यायालय तथा ई.डी. की भी परवाह नहीं कर रहे हैं।

सूक्त के द्वितीय मंत्र में सरमा स्पष्ट रूप में कहती है– **इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि भद्र इच्छती पणयो निधीन्वः।** अर्थात् हे जमाखोरो! धन को गुप्त स्थानों में छिपाने वाले व्यवहार कुशल पणि लोगो! मैं तुम्हारे उस गुप्त खजाने को ढूंढती हुई सर्वत्र घूम रही हूँ। काले धन को छिपाने वालों में सामान्य व्यक्ति ही नहीं होते, अपितु राष्ट्राध्यक्ष तक संलिप्त रहते हैं। सन 2016 में 'पनामा लीक्स' के द्वारा इस प्रकार धन छिपाने वालों के नाम उजगार करने से दुनियां भर में हड़कम्प मच गया है। इसमें भारत के कुछ शीर्षस्थ व्यक्ति तथा अभिनेता भी सम्मिलित हैं। पणि लोग कहते हैं– **'स्वसारं त्वा कृणवै'** हम तुम्हें अपनी बहिन बनाते हैं। बहन तो भाई की रक्षा ही करेगी। सरमा उत्तर देती है– **नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्व इन्द्रो विदुरंङ्गिरसश्च घोराः** मंत्र 10। अर्थात् मुझे यह भ्रातृत्व स्वीकार नहीं है। इन्द्र=राजा तथा उसके प्रचण्ड सैनिक ही इस विषय में निर्णय ले सकते हैं।

इस सूक्त की व्याख्या निश्चित रूप से राजनीतिपरक है। मेघ तथा विद्युत् पक्ष में सम्पूर्ण संवाद की संगति लग ही नहीं सकती। डॉ. कवडेकर ने सरमा की व्याख्या प्रथम महिला राजदूत के रूप में की है। यह भी संभव है। पाकिस्तानी सैनिक, हमारी सीमा से हमारे पशु तथा धन–सम्पत्ति आदि लूट लेते हैं। राजा की दूती उन्हें वहां जाकर सावधान करती है। इस सूक्त के अलावा ऋ. 1/62/3 में भी सरमा पणि का प्रसंग चलाया गया है।

योगी अरविन्द ने सूक्त के मंत्रों की आध्यात्मिक व्याख्या भी की है। यथा–इन्द्र मन है, सरमा अन्तर्ज्ञान है। गौवें दिव्य ज्योतियाँ हैं। जयदेव विद्यालंकार ने भी आध्यात्मिक पक्ष में सरमा का अर्थ आत्मिक चेतना विवेक बुद्धि माना है। चन्द्रमणि विद्यालंकार ने राष्ट्रीय पक्ष में सरमा को देव=राजा की वाणी कहा है जो धन को जमा करने वालों का पता लगाती है। यही पक्ष सुस्पष्ट है, अन्य कोई नहीं। राजा को दूत को निर्भीक तथा निर्लोभ होना चाहिए। उसे पणियों के गुप्त ठिकानों का भी पता होना चाहिए, यह शिक्षा यह सूक्त देता है। हमने अपनी पुस्तक 'वैदिक इतिहास विमर्श' में इस प्रकार के सभी संवाद सूक्तों तथा आख्यानों की संगति लगाने का प्रयास किया है।

बी–266 सरस्वती विहार
दूरभाष– 9868144317

☞ *पृष्ठ 06 का शेष*

विश्व शांति ...

अर्थात् आचरण से गिरा विप्र वेद पढ़ने के फल को प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये वेद स्थान–स्थान पर बुराइयों को छोड़ने और सद्गुणों को धारण करने का आदेश देता है। वेद कहता है कि :–

ज्ञानीजनों ने मनुष्यों के पाप कर्मों से निवृत्त होने के साथ मर्यादायें बांधी हैं। उनमें से यदि कोई एक का भी उल्लंघन करता है तो वह महापापी है. वेद की सात मर्यादायें निरुक्त के अनुसार निम्न हैं:–

1. **सुरापान**–शराब आदि मादक द्रव्यों का सेवन।

2. **दुष्ट्रस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवनम्**– अर्थात् बुरे कामों का बार–बार सेवन करना और उनसे कभी भी बाज ना आना।

3. **पातकेन्तोद्यम्**–अर्थात् पाप कर्म करके भी उसे छुपाने के लिये असत्य बोल देना।

4. **तल्पारोरणम्**–परस्त्री गमन अर्थात् व्यभिचार करना।

5. **स्तेय**–चोरी करना अर्थात् पर पदार्थों पर स्वामी की बिना आज्ञा अनुमति के अधिकार कर लेना।

6. **ब्रह्महत्या**–धर्मात्मा व ज्ञानी जनों की हत्या करना या उन्हें किसी प्रकार का क्लेश पहुँचाना।

7. **भ्रूणहत्या**–गर्भपात करना।

यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से उपर्युक्त मर्यादाओं पर विचार करेंगे तो हमें यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि संसार की कोई भी ऐसी बुराई नहीं जो कि उपर्युक्त कोटि की मर्यादाओं के अन्तर्गत न आ जाती हो, जिनका कि वेद बलपूर्वक छोड़ने का आदेश न देता हो। वेद तो यहाँ तक कहता है कि उपर्युक्त सात मर्यादाओं में यदि कोई एक मर्यादा का भी उल्लंघन करता है तो वह महापापी है। आचार के सम्बंध में वेद का कितना ऊँचा आदर्श है इस उच्च आदर्श को लक्ष्य में रखकर भी एक आदर्श वैदिक धर्मानुयायी अपनी दैनिक प्रार्थना में यदि भगवान से कुछ मांगता है तो यही कि है देवाधिदेव–

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव।।

हे प्रभु! आप हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण तथा बुराइयों को हमसे सर्वथा के लिए दूर कर दो तथा जितने भी हमें पतन की ओर ले जाने वाले दुष्कर्म हैं उन्हें सर्वदा के लिए दूर कर दो तथा हमारे कल्याण के समस्त भद्र भावों को हमें प्राप्त कराओ। एक आदर्श वेदानुयायी यह भली प्रकार जानता है कि–

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः

सदाचार से भ्रष्ट तथा पतित मनुष्य को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। उसे भली प्रकार ज्ञात है कि सदाचारी या धर्मपरायण बनना ही एक आदर्श आर्य बनना है, केवल वेद के पढ़ने–सुनने मात्र से नहीं। इसीलिए वेद में एक आर्य पापकर्म को बल पूर्वक कहता है कि–

यो नः पथमन् न जहासि तमुत्वा जहीमे वयय्

हे पाप ! यदि तू हमें स्वेच्छापूर्वक नहीं छोड़ता तो हम ही तुम्हें जबरदस्ती अपने जीवनोद्यान में से उखाड़ कर फेंक देते हैं। आप देख लें वेद सदाचार का कितना ऊँचा आदर्श हमारे सम्मुख उपस्थित करता है क्योंकि धर्म आचार की वस्तु है न कि केवल विश्वास की।

आचार्य, महर्षि निर्वाण भवन,
भिनाय की कोठी, आगरा गेट
अजमेर (राज.) 305001
चलभाष 09672286863

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 04-05\05 \2016
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39\57

वेद विदुषी आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा 'आर्य रत्न' सम्मान से सम्मानित एवं अनूचान साहित्य पुरस्कार से पुरस्कृत

श्री राव हरिचन्द्र आर्य चेरिटेबलल ट्रस्ट, नागपुर द्वारा मावलंकर ऑडीटोरियम, नई दिल्ली में आयोजित सम्मान व पुरस्कार समारोह में बालिकाओं को सुशिक्षित व संस्कारित करने में जुटी, आर्यजगत् की प्रसिद्ध गुरुकुल की कुशल आचार्या, संचालिका, वेद, व्याकरण, दर्शन, कर्मकाण्ड आदि शास्त्रों की मर्मज्ञ, वेदों के तथ्य उद्घाटित करने वाले **'वेद समाधान समज्या'**, **अथर्ववेद है ब्रह्मवेद** सदृश अनेक ग्रन्थों की रचनाकार, वेद विदुषी आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा, पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी, आर्ष कन्या गुरुकुल शिवंगज राजस्थान को आर्यरत्न सम्मान से सम्मानित एवं अनूचान साहित्य पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। यह सम्मान व पुरस्कार मान्य वी. के सिंह रिटायर्ड जनरल, केन्द्रीय विदेश राज्य मन्त्री, भारत सरकार, मान्य डॉ. हर्षवर्धन केन्द्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मन्त्री, भारत सरकार के अप्रत्यक्ष आशीर्वाद एवं मान्य श्री सत्यपाल सिंह जी

लोकसभा सदस्य, भारत सरकार के सान्निध्य में श्री स्वामी सुमेधानन्द जी, लोकसभा सदस्य, भारत सरकार द्वारा 101000/– रू. का चेक, स्मृति चिह्न, सम्मान पत्र दिया गया तथा राव परिवार की बहनों द्वारा, शॉल, श्रीफल व पुष्पमाला द्वारा सम्मान किया गया।

ट्रस्ट अनेक वर्षों से विद्वानों को सम्मानित करता आ रहा है, इस बार आर्य रत्न एक लाख एक हजार, आर्य विभूषण इक्यावन हजार, आर्य गौरव इक्कीस हजार ये तीन सम्मान व पुरस्कार 9 आर्य विद्वानों को दिए गये। आचार्य सूर्यादेवी चतुर्वेदा को सर्वोच्च आर्य रत्न, अनूचान साहित्य पुरस्कार से अलंकृत किया गया। इससे पूर्व ट्रस्ट द्वारा मात्र पुरुषवर्ग को ही सम्मान प्राप्त होता रहा। इस वर्ष ट्रस्ट ने महिलाओं में सर्वप्रथम आचार्या सूर्यादेवी का चयन किया। मान्य श्री हरिश्चन्द्र राव जी ने बताया, जब ट्रस्ट ने महिलाओं को सम्मानित करने की बात रखी, तो बेटी सूर्या का ही मेरे मुँह पर नाम आया। आचार्या जी का चयन गुरुकुल व गुरुकुल परिवार के लिए महती उपलब्धि व हर्ष का विषय है।

समारोह के अध्यक्ष स्वामी सुमेधानन्द एवं आशीर्वाद प्रदाता स्वामी प्रणवानन्द ने सभी विद्वानों के तप, श्रम, साधना की भूरि–भूरि प्रशंसा की, ट्रस्ट का आभार किया। आर्य विभूषण सम्मान प्राप्तकर्त्ता डॉ. महावीर मीमांसक जी, दिल्ली ने आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा को आधुनिक गार्गी बताया। सम्मान समारोह में उपस्थित श्री सत्यानन्द आर्य, आचार्य भद्रकाम वर्णी, आचार्य राजवीर शास्त्री, आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, सार्वदेशिक सभा दिल्ली के मन्त्री विनय आर्य आदि अनेक दिल्ली नगर के आचार्यों, गणमान्यों ने आचार्या जी को बधाइयाँ दीं।

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा ने आभार व्यक्त करते हुए कहा, यह सम्मान महर्षि दयानन्द, गुरुजन एवं मेरे पिता श्री लाखन सिंह जी आर्य, पूज्या माता श्रीमती त्रिवेणी देवी जी का है। गुरुकुलों के संचालन, पठन पाठन के साथ लेखन, प्रवचन द्वारा आर्यसमाज, वैदिक मिशन, संस्कृत, वेद एवं संस्कृति को प्रवद्ध व इसका प्रचार करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है।

नव वर्ष प्रतिपदा की वैज्ञानिकता पर विशेष व्याख्यान

पीजी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य) के संस्कृत विभाग द्वारा 8 अप्रैल, 2016 को 'भारतीय नववर्ष की वैज्ञानिक' विषय पर एक विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। इस व्याख्यान के अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय ने भारतीय नववर्ष विकमी संवत् की वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में अपने विचार रखे। कॉलेज के प्राचार्य डॉ. रवीन्द्र कुमार गुप्ता ने विशेषज्ञ विद्वान डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय का स्वागत करते हुए कहा कि हमें अपनी भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रतिमानों की जानकारी होनी चाहिए। विकमी संवत् भारतीय संवत् है, इसलिए इसे हमें अवश्य मनाना चाहिए। व्यक्तिगत स्तर पर जिस तरह से हम अपनी चीजों से लगाव रखते हैं उसी तरह हमें राष्ट्र के

स्तर पर जो चीजें हमारी पहचान हैं उनसे अवश्य लगाव रखना चाहिए। यह संवत् सर्य. चन्द्रमा और नक्षत्रों की गति पर आधृत पूर्णतः वैज्ञानिक नववर्ष है।

इस अवसर पर उपस्थित विशिष्ट विद्वान डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय ने विकमी संवत् के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश डालते हुए बताया कि मालवा के नरेश भतृहरि के छोटे भाई विकमादित्य ने राज्य से संन्यास से पूर्व राज्य को विस्तार किया और उन्होंने सम्राट् की उपाधि धारण की। उसी दिन से ही उन्होंने विकम संवत् चलाया। भारतीय परम्परा में यूं ही संवत चलाने का अधिकार किसी को नहीं होता था उसके लिए आवश्यक होता था कि पहले अपने को राज्य की प्रजा के सभी कर्ज से मुक्त करना आवश्यक होता था। उनके अनुसार हमारे वेदों में पृथ्वी के सम्बन्ध में प्रामाणिक सूत्रों द्वारा पहले से उसकी गति, उसकी घूमने की दिशा आदि का ज्ञान मिलता है। नक्षत्रों के आधार पर समय का मान निकालना भी वेदों में पहले से ही भारतीयों ने जान लिया था। ऐसे में भारतीय पर्व. ज्ञान. साधना. चेतना आदि सभी की गणना से भारतीय नव संवत्तसर कलैण्डर ही प्रामाणिक और पूर्णतः वैज्ञानिक है। कलैण्डर में तिथि और वार के साथ–साथ नक्षत्र, योग और कर्म के रूप में अन्य तीन अंगों के सम्मिलन से पंचांग द्वारा हम पृथ्वी की सम्पूर्ण गणना कर पाने में समर्थ हैं जो पूर्णतः वैज्ञानिक आधार है।

व्याख्यान के अंत में संस्कृत विभाग के प्रभारी डॉ. सत्यकाम शर्मा ने सभी अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापित किया। व्याख्यान का संचालन संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ. योगेश द्वारा किया गया।

डी.ए.वी. स्कूल चीका ने 'रन फोर हैल्थ' कार्यक्रम आयोजित किया

डीए.वी.सी.सै. स्कूल चीका ने नशामुक्त भारत के अभियान को गतिमान करते हुए डी.ए.वी. स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के द्वारा **'रन फोर हैल्थ'** कार्यक्रम आयोजित किया गया। डी.ए.वी. स्कूल की प्राचार्या श्रीमती पूनम सिंह ने चीका अनाज मण्डी गेट न. 1 से सभी धावकों को झंडी दिखाकर रवाना किया। शिक्षकों की पूरी देख रेख में इस **'रन फोर हेल्थ'** कार्यक्रम का आयोजन

किया गया। चीका मण्डी से स्कूल तक शिक्षकों ने ओ३म् के कैंप पहने हुए दौड़ने वाले बच्चों की पूरी निगरानी की। इस कार्यक्रम के माध्यम से डी.ए.वी. स्कूल चीका के विद्यार्थियों ने चीका नगरवासियों को स्वास्थ्य के प्रति सजग होने व नशा आदि बुराईयों से बचने का संदेश दिया।

चीका अनाज मण्डी से स्कूल तक बच्चों को बीच–बीच में पानी व मैडीकल सुविधाओं का पूरा बन्दोबस्त किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**